श्राद्धविषय विचार ॥

शंका जो तुम ने ब्राह्मण सर्वस्व भाग १ संख्याङ्क१ पत्र १९ में लिखा था कि ब्राह्मणों का पट क्या लेटरबक्स है जिसमें खाया हुआ अन्न पितरों को पहुंचेगा सो इसका उत्तर हम को ठीक नहिं मिला सो किस तरह से अन्न जल पहुंचता है साफ लिखो, और हम को पितरों का होना तो तुम्हारे लिखे युक्ति प्रमाणों से निश्चय यथार्थ हुआ पदार्थ का पहुंचना नहिं हुआ—फिर जो तुम इसी अङ्क के पृष्ठ २२ में लिखते हो कि सृष्टि के आरंभ में जब सब लोक लोकान्तरस्थों की व्यवस्था परमात्माने की तब पितर लोग जनेऊ अपसव्य कर बायां, जानु, घोंटू पृथिवी में लगा के प्रजापति के सन्मुख जाकर बैठे उन से प्रजापति ने कहा कि महीने २ भर में एक बार अमावस्या को तुम्हारा भोजन होगा सो इसमें शंका यह है की सृष्टि के आरम्भ में वे ब्रह्मा ने रचे थे या पहले ही से थे क्योंकि जब तक मनुष्य तो मरने लगेहि नहिं थे कि वे पितर हो जाय और हैं भी तो मनुष्य मरके उन में जाकर मिलता है या जन्म लेता है जो उन्हीं में मिलना कहोगे तो परमेश्वर के यहां से और२ जीव आन के पैदा होते होंगे सो औरहि होंगे तो इन में विपत्ति संपत्ति भेद न होना चाहिये क्यों कि ऐसे तो ईश्वर में विषमता सिद्ध हो जायगी और मुसलमानों का पक्ष सिद्ध हो गया कि मरा सो गया खुदा के जीवों के कोठे भरे हुये हैं वे ऐसा मानते हैं। और तुम कहो कि कर्मानुसार जन्म ही लेते हैं और देव मनुष्य पशु पक्षि आदि में उन श्राद्ध किये हुये अन्नदान का देवताओं को अमृत और मनुष्य को अन्न और पशु पक्षि घास फल दाना आदि होकर मिलता है तो बताओ श्राद्धकर्ता को क्या फल प्राप्त हुआ? क्योंकि हमारे पिता माता आदि जाकर आगे जन्म ले किसी की भैंस गाय बछड़ा बने और हम ने श्राद्ध में उन के हित लड्डू जलेबी ब्राह्मण को जिमाये और उन का उन पितरादिकों को मिला घास तो बड़ा अंधेर है और मिला भी तो पशु उसी का पला जिस के जन्म लिया है सो उन दुग्ध आदि फल का भोक्ता तो वही ठहरा जिस के वे हैं हम को कोई भी फायदा न मालूम हुआ और हम श्राद्ध नहिं करैंगे तो क्या वह उक्त पुरुष अपने पशु को घास न गेरेगा क्या वह पक्षि आदि वृक्षों के फल नहिं खा सक्ता और जो तुम कहो कि इतने

स्वर्ग नर्कादि भोगै इतने ही वहां श्राद्धका फल मिलता है तो जैसे यहां किसी को कैद हो गई क्या वह राजा उस को खानेको नहीं देगा और स्वर्ग मिलातो क्या स्वर्ग में पदार्थ भोगने को नहीं औ श्राद्ध से हि उस को स्वर्ग में खाने को मिलता हो तो वह स्वर्ग कैसा ? । इन का उत्तर जरूर निवेदन करना, ॥

ह० पं० भैयाराम शर्मा करहंसवासी

पाठकगण श्राद्ध विषय में फिर भी अनेक शंकायें हमारे समीप उपस्थित हुई हैं । इस से हम इस विषय पर फिर से लेख चलाते हैं । इसी के साथ में पहिले का शेष लेख भी यथाशक्य आजावेगा । अब पहिली शंका यह है कि —“ क्या ब्राह्मणों के पेट लेटरबक्स हैं उन में खाया अन्न पितरों को कैसे पहुंच जाता है ? ” यद्यपि इस का उत्तर पहिले भी लिखा गया है । तथापि अब फिर साफ २ लिखते हैं कि ब्राह्मणों का खाया हुआ अन्न लोकान्तरस्थ वा देशान्तरस्थ पितरों को पहुंचाना शास्त्रकारों का अभीष्ट सिद्धान्त ही नहीं है । यदि किसी ब्राह्मण को निमन्त्रण दे कर अपने घर पर आदर सत्कार पूर्वक भोजन कराने को बुलाया जाय तो इस से यह सिद्ध हो जायगा कि उस के घर पर भोजन भेजना पहुंचाना अभीष्ट नहीं है । और जिन ब्राह्मणों के यहां कुछ भोज्य वस्तु मिठाई परोसा वा सीधा भेजना अभीष्ट होता उन को निमन्त्रण देकर अपने यहां नहीं बुलाया जाता । इसी के अनुसार पितृयज्ञों और श्राद्धों में वेद मन्त्रों द्वारा पितरों का आवाहन होना स्पष्ट सिद्ध है । जब वेद हम को साफ २ पितरों के आवाहन को बतला रहा है तो परोसादि के तुल्य पितरों के पास लोकान्तर देशान्तर में वा किसी योन्यन्तर में अन्न पहुंचाना अभीष्ट नहीं है यह सिद्ध हो गया ।

आयन्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः ॥ अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत सदःसदः सदत सुप्रणीतयः । अत्ता हवीꣳषि प्रयतानि बर्हिष्यथा रयिꣳ सर्ववीरं दधातन शु० यजु० ॥ अ० १९ । ५८ । ५९ ॥

सर्वांस्तानग्न आवह पितॄन् हविषे अत्तवे॥ अथर्व

भाषा–सोमयागादि में पूजने योग्य अग्नि में जिन का दाह कर्म विधि पूर्वक हो चुका है ऐसे दिव्य पितर देवयान नाम देवताओं के मार्गों से आवें ॥ पहिले जब श्राद्ध को मानते थे तब स्वा० द० ने भी पार्वण श्राद्ध की पद्धति स्वय बनाई थी (जिस की नकल हमारे पास अब भी विद्यमान है) उस में भी यही (आयन्तुनः०) मन्त्र पितरों के आवाहन में लिखा है । हे अग्नि में दाह कर्म जिन का हुआ ऐसे अग्निष्वात्त पितरो यहां श्राद्ध या पितृपक्ष में आइये । हे नम्र कोमल स्वभाव वाले पितरो आप लोग इस यज्ञ में आकर अपने २ नियत स्थान पर बैठिये । और प्रकृष्ट नियम से यथा विधि के साथ कुशा पर रक्खे हुए पिण्डों का भोग लगाइये । और सब पुत्र पौत्रादि वीरों सहित धन हमारे लिये दीजिये । हे अग्निदेव ! उन सब प्रकार के पितरों को हविष्यान्न रूप पिण्ड खाने के लिये हमारे श्राद्ध में आवाहन कीजिये । इत्यादि मन्त्रों से श्राद्धादि के समय पितरों का आवाहन करना वेद सेसिद्ध है ॥ इसी के अनुसार मनु जी ने भी लिखा है कि–

निमन्त्रितान् हि पितर उपतिष्ठन्ति तान् द्विजान् ।
वायुवच्चानुगच्छन्ति तथाऽऽसीनानुपासते ॥ अ०३।१८९

भाषा-जिन ब्राह्मणों को श्राद्ध में न्योता दिया जाता है उन के समीप में पितर लोग उसी निमन्त्रण के समय से आकर ठहरजाते हैं। यदि वे ब्राह्मण कहीं चलते हैं तो उन के पीछे २ वायु रूप होकर पितर भी चलते और जब वे ब्राह्मण बैठ जाते हैं । तब पितर भी उन के समीप में बैठ जाते हैं । ब्राह्मण के साथ आने वाले पितर जिन का अत्युग्र प्रबल पुण्य हो तो साक्षात् दीख भी सकते हैं । वाल्मीकीय रामायण में लिखा है कि जब भगवान् रामचन्द्र जी ने वन में अपने पिता दशरथ जी का श्राद्ध किया उस में जो न्योते हुए ऋषि लोग आये उन के पीछे २ महाराजा दशरथ जी को आते देख कर सीता जी आड़ में हो गयीं । अर्थात् सीता जी ने साक्षात् महाराज दशरथ को देखा था यह मनु जी के कथन का उदाहरण इतिहास में लिखा है ।

यावदुष्णं भवत्यन्नं यावदश्नाति वाग्यतः ।
पितरस्तावदश्नन्ति यावन्नोक्ता हविर्गुणाः ॥

भाषा जब तक श्राद्ध का अन्न गर्मागर्म रहता जब तक ब्राह्मण लोग मौन होकर खाते हैं और जब तक यजमान के पूछने पर भी ब्राह्मण लोग

प्रत्युत्तर में भोजन की प्रशंसा नहीं करते तभी तक पितर लोग ब्राह्मणों के संग में वायु रूप सूक्ष्म हुए भोजन करते हैं । पाठक महाशय ! आप समझ गये होंगे कि पितरों का श्राद्ध में आना पिण्डों का तथा ब्राह्मणों के साथ भोजन करना प्रमाण सिद्ध है । इसी लिये पितरों को श्राद्ध का फल कैसे पहुंचता है इस का विचार ग्रन्थों में नहीं लिखा गया । और पितरों के पास हमारा पहुंच सकना अति कठिन वा असम्भव था परन्तु श्राद्धादि में देवता और पितरों का आसकना सुगम वा सहज है क्योंकि वे लोग समर्थ और हम असमर्थ हैं इसी लिये यह सिद्धान्त वेद में रक्खा गया कि देवता तथा पितर लोग यज्ञ श्राद्धादि में आवाहन किये हुए आवें ॥

यदि कोई कहे कि देव पितर आते हुए हमें दीख पड़ें तो हम मानें तब हम उत्तर देंगे कि क्या दिन में उल्लू को नहीं दीखता तो सब के लिये अन्धकार मान लोगे ? । वेद शास्त्र रूप आंखों से देवों तथा पितरों का सूक्ष्म यथेच्छाचारी होना तथा यज्ञादि में आना दीख सकता है सो वेद के चक्षु स्वा० द० ने सब समाजियों के ऐसी दवाई डाल के फोड़ दिये कि जिस में अन्य भी कोई दवाई नहीं लगती । देवों और पितरों का सूक्ष्म कारण शरीरधारी योगसिद्धियुक्त होना क्षणमात्र में लाखों कोश आजा सकना अपनी इच्छानुसार अनेक रूप धारण कर सकना इत्यादि बातें युक्ति से भी सिद्ध हो सकती हैं जिनको फिर किसी अवसर पर लिखेंगे । यह पहिले प्रश्न का उत्तर होगया ॥

अब द्वितीय शंका यह है कि सृष्टि के आरम्भ में पितरों को ब्रह्मा जी ने बनाया वा पहिले ही से थे ।

इस का संक्षेप उत्तर यह है कि प्रत्येक ब्राह्मदिन के अन्त में होने वाले काल्पिक प्रलय में देवता और पितरों का प्रलय ही नहीं होता केवल मानुषी सृष्टि का प्रलय होता है ॥ दिव्य पितर सनातन काल से चले आते हैं । प्रजापति के पास पितरों आदि के जाने की आख्यायिका उन २ के कर्म का भेद दिखाने के लिये है कि परमात्माने इन सब के कर्म इस २ प्रकार नियत कर दिये हैं । महा प्रलय में अवश्य सब ब्रह्मापर्यन्त देवताओं का भी प्रलय हो जाता है । तिस के बाद फिर होने वाली सृष्टि में वे ही देव पितर मनुष्य फिर २ प्रकट किये जाते हैं जो पहिली सृष्टि में देव पितर आदि रहे थे । इसी से यह शंका भी दूर हो सकेगी कि मनुष्य मर कर पितरों में जाके मिलता है वा यहां पृथिवी पर जन्मलेता है। इसका संक्षेप उत्तर यहभीहै कि आमतौर से कोई नियम नहीं अपने २ कर्मानुसार स्वर्ग नरक देव पितर मनुष्य पश्वादियोनि सब को मिलती है । शेष आगे ॥

वेदप्रकाश का अज्ञान ॥

पुराणों में वर्णव्यवस्था—ऐसा हेडिंग देकर पृ० १३० । १३१ में (यथमा-सान्योद्विजोभुङ्क्ते०) इत्यादि पद्मपुराण का श्लोक लिख कर तु०रा० कहते हैं कि छः महिने में ब्राह्मण शूद्र होजाता है और पद्मपुराण के लेखानुसार कहते हैं कि विदुर जी इसी जन्म में ब्राह्मण होगये ।

समाधान—यह प्रमाण कोई नया नहीं किन्तु स्मृतियों में ऐसे प्रमाण से· कड़ों मौजूद हैं। परन्तु धर्मशास्त्रों तथा पुराणों की व्यवस्था लगा सकना हंसी खेल नहीं है उस में पाण्डित्य की आवश्यक्ता है । वह पण्डिताई धनसंग्रह से होती तो बड़े २ सेठ साहूकार बड़े २ पण्डित होगये होते । यदि कुछ उलटा सीधा लिखने से पण्डिताई हो जाती तो भांड़लीला लिख २ के मूर्खों को रिझाने वाले बड़े पं० हो जाते । छः महिने तक जो ब्राह्मण शूद्र का अन्न खाता है वह शूद्र हो जाता है इस वचन में यह विचार करना होगा कि तु०रा० बतलावें कि ६ महिने पूरे होने से दो चार घड़ी पहिले तक तो वह ब्राह्मण ही बना है वा नहीं यदि नहीं कहो तो छः महिने का नियम व्यर्थ हो गया । यदि हां कहो तो दो चार घड़ी में शूद्र हो जाना मानो । और यदि तु०रा० इस वचन को सत्य मानते हैं तो वर्षों से शूद्रान्न खानेवाले समाजी ब्राह्मणों को पहिले नोटिस देके शूद्र करदें अन्यथा माना ही क्या दार्शनिक नियम देखो तो मानने पड़ेगा कि जो ब्राह्मण पहिले से वास्तविक ब्राह्मण है तो अब भी शूद्र नहीं हो सकता और यदि कृत्रिम नाम रूप से कुछ काल के लिये देखने कहने मात्र ब्राह्मण होगया था तो वास्तव में वह शूद्र ही था तब शूद्र हो ही क्या गया । जैसे दृष्टान्त लीजिये कि वास्तविक सुवर्ण कैसी ही नीच दशा में पहुंच कर अत्यन्त मलिन होजाने पर भी कभी लोहा नहीं हो जाता। यदि किसी युक्ति से सुवर्ण में कोई निकृष्ट धातु मिलाया भी जाय तो संकर होजायगा । पर सुवर्णांश नष्ट न होगा । तथा किसीने कहा कि गेहूं इतने दिन में इस २ कारण मट्टी हो जाता है । तो यहां नाम रूप कुछ काल के लिये कहने देखने मात्र गेहूं था वास्तव में मट्टी ही थी उत्पत्ति से पहिले मट्टी रूप था पीछे भी मट्टी ही होजाता है ।

आदावन्तेचयन्नास्ति वर्त्तमानेऽपितत्तथा ।

जो पदार्थ आदि अन्त में नहीं किन्तु बीच में भिन्नरूप से दीखता है वह बीच में भी कुछ नहीं अर्थात् जो आदि अन्त में है वही बीच में भी है। आदि में उत्पत्ति से पहिले गेहूं नहीं था अन्त में भी नहीं रहता तब वर्त्तमान में भी गेहूं नहीं है आदि अन्त में पृथिवी थी वर्त्तमान में भी गेहूं नाम रूप वाली पृथिवी है। इन दो नियमों से भिन्न यदि तीसरा कोई नियम युक्ति सिद्ध है तो तृ०रा० दिखावें। अब रहा यह विचार कि तब क्या स्मृति पुराणादि का लिखना मिथ्या है कि ब्राह्मण शूद्र होजाता है?।

तो इस का उत्तर हमारे वेदमतानुसार लीजिये स्मृति पुराणादि सब ठीक हैं केवल समझने की त्रुटि है इन ग्रन्थों की व्यवस्था लगाना हंसी खेल नहीं। लीजिये प्रमाण व्याकरण महाभाष्य–

अन्तरेणापि वतिमतिदेशो गम्यते। अब्रह्माणं ब्राह्मणमित्याह तेन गम्यते ब्राह्मणवदस्मिन् क्षत्रिये वर्त्तितव्यमिति। एवमिहापीति।

भा० तुल्यवाचक शब्द कहे बिना भी तुल्यार्थप्रतीति होती है। जैसे ब्राह्मण से भिन्न क्षत्रिय को किसीने ब्राह्मण कहा तो वहां यह अर्थ होगा कि ब्राह्मण के तुल्य उस क्षत्रिय को जानो वा उस के साथ ब्राह्मण का सा वर्त्ताव करो। इसी के अनुसार यहां मानना होगा कि जो शूद्र नहीं किन्तु ब्राह्मण है उस को शूद्र कहा गया तो शूद्रवत् समझना चाहिये। अर्थात् ग्रन्थकारों की यह शैली है कि वे कहीं किसी शब्द को नहीं बोलते तो भी शास्त्र की संगति लगाने वालों को वहां वह शब्द जोड़ लेना चाहिये। इस से स्मृति पुराणों की व्यवस्था लग जाती है। जो शूद्र के तुल्य उस ब्राह्मण को नीच मानना तो सभी शास्त्रों के सम्मत है ही। इसी लिये जाति ब्राह्मण वा ब्राह्मणब्रुवादि शब्द गुण कर्म हीन ब्राह्मणों के लिये धर्मशास्त्रों में रक्खे गये हैं। यदि किन्हीं दो पदार्थों की वास्तविक सर्वांश में तुल्यता कही तो कुछ भेद न रहने से दो पदार्थ ही नहीं हो सकते। इसी लिये महाभाष्यकार ने यह भी लिखा है कि –

सति किंचिद्भेदे तुल्यमित्युच्यते।

कुछ भेद रहने पर ही तुल्य कह सकते हैं। यदि कहो—

जन्मनाजायतेशूद्रः संस्काराद्द्विजउच्यते ॥

ब्राह्मण जन्म से तो शूद्र ही होता है संस्कार से द्विज वा ब्राह्मण बनता है इस वचन को कोई लोग मनु का कहते मानते हैं सो मिथ्या है मनु में यह वचन कहीं भी नहीं है । मनु में यह अगला वचन इसी आशय का है कि—

शूद्रेणहिसमस्तावद् यावद्वेदेनजायते ॥

जब तक उपनयन वेदारम्भ संस्कार नहीं होता तब तक शूद्र के समान ही वह ब्राह्मणादि है। अब रहा विदुर जी का ब्राह्मण हो जाना लिखा है वा नहीं तु०रा० को उचित तो यह था कि पद्मपुराण का वह प्रमाण उपस्थित करते तब उस पर विचार का अवसर होता। प्रमाण न लिखने से वीतहव्य के तुल्य कुछ दाल में काला होने का अनुमान है।पर हम मान भी लेते हैं कि लिखा ही होगा। तब कितने काल तक किये किन २ गुण कर्मों से विदुर जी ब्राह्मण हो गये यह दिखाना तु०रा० का काम रहा । इस बात पर विवाद ही नहीं था न है कि ब्राह्मणादि शूद्र हो सकते हैं वा नहीं । यह तो कुछ बहुत बड़ी बात उन के लिये नहीं कि ब्राह्मण को शूद्र वा शूद्र को ब्राह्मण बनादें कि जिन ने समुद्र को पी लिया जो चाहें तो नये लोकों और लोकपाल देवताओं को रच दें जो चाहें तो अग्नि को जल और जल को अग्नि बनादें उन के लिये किसी का वर्ण बदल देना कुछ भी बात नहीं । हम तो यहां तक मानते हैं कि जो कुछ असम्भव है उस सब को सम्भव वे ही महर्षि कर सकते हैं। स्वा० द० तथा समाजियों का पक्ष तो यह था और है कि जिस किसी नीच भंगी चमरादि को अपने अनुकूल कर पाओ उसे थोड़ा अक्षराभ्यास कराके कुछ अशुद्ध मन्त्र याद करा दो व कुछ ऊटपटांग सन्ध्यादि करने लगे उस के गले में जनेऊ डाल दो शर्मा वर्मादि का कोई पुछल्ला उस के लगा दो बस वह शूद्र ब्राह्मणादि हो गया । सो ऐसा कदापि नहीं हो सकता । जब कि मतंग कई सौ वर्ष तप करके भी ब्राह्मण न हो सका तो क्या ये लोग सूत के धागे मात्र से ब्राह्मण हो जायंगे ॥

जब तुम को अभी तक यह भी होश नहीं कि अग्निहोत्र क्या है तो उस का अङ्गाङ्गि भाव समझ लेना दुर्लभ है।जो सौ तक गिनती भी नहीं जानता वह रेखा गणित बीजगणित को किसी के समझाने पर भी कैसे समझ लेगा ? । यदि तु० रा० को यह अभिमान हो कि अग्निहोत्र को हम जानते हैं तो हम अग्निहोत्र के विषय में एक दो प्रश्न करेंगे जिस का उत्तर देदें और

यह ठीक निकले तो अग्निहोत्र का जानना सिद्ध हो जायगा। अन्यथा ज्ञान की कलई तो खुल ही रही है।

देवलक और मांस विक्रयी ॥

हम ने जो कुछ भाग ३ अं० १२ पृ० ५४७। ५४८ में लिखा है पाठकों ने देखा होगा। उस पर तु०रा० अपने वे०प्र० पृ० १३१ में लिखते हैं कि मांस वेचने वाले के समान पुजारियों को भी०श० ने माना है। सो यह महामिथ्या है हम ने ऐसा कहीं भी नहीं लिखा। मिथ्या लिखने कहने का क्या अब ठेका ही तु०रा० लेलेंगे?। इसी से आ०समाज की अधोगति का अनुमान होता जाता है क्योंकि इन में ऐसे ही मनुष्य बहुत भरे हैं। यदि एक श्लोक में मनु के लिख देने से तु०रा० ने समानता की कल्पना करली तो जब कभी तु०रा० के पासमें कोई कुत्ता बैठा हो तब कोई कल्पना करले कि एक स्थान में होने तथा दोनों ही आंख से देखते कान से सुनते हैं इस से तु०रा० कुत्ते के समान हैं क्या यह कल्पना नहीं हो सकती?। वेतन लेकर पूजा करने वाला यह देवलक शब्द का ही अर्थ है। लोक में भी एक ही दृष्टि से देखो वेतन लेकर पूजा करने वाले ही पुजारी कहाते हैं किन्तु स्वयं इच्छा से श्रद्धा के कारण मन्दिरादि में जा २ कर पूजा करने वाले गृहस्थ पुजारी नहीं कहाते। तु० रा० को असली बात जो हमने ब्रा०स० पृ० ५४७ में पूछी थी कि „यदि देवपूजा निन्दित है तब क्या वेद का पढ़ना पढ़ाना भी तुम्हारे मत में निन्दित है?।" इस का उत्तर तु० रा० को कुछ नहीं आया चुपसाध गये निग्रहस्थान में ऐसे ही बात२ में प्रवेश करते चलो यही तुम्हारा निज घर है।

ब्राह्मणग्रन्थों का वेद होना सिद्ध होगया ॥

तु०रा० को कुछ जवाब नहीं आया। चिटपिटाते २ कुछ लिख गये हैं जिस को शंका हो देख ले ब्रा०स० पृ० ५४८। ५४९ और वे०प्र० पृ० १३१ को मिला देखे। पिष्टपेषणवत् हम को वही बात फिर लिखने की आवश्यक्ता नहीं। यहां भी तु०रा० का पराजित होना स्पष्ट सिद्ध होगया।

अहिंसा धर्म ॥

तु०रा० मांसपार्टी वाले आर्यसमाज को आ०समाज ही नहीं कहते मानते। परन्तु महात्मा हंसराज बी० ए० को कोई पूछे तो वे उस पार्टी के सैकड़ों समाज के अधिष्ठाता प्रसिद्ध हैं। वे लोग इन को आ०समाजी नहीं क-

छले मानते !। क्यों तु०रा० जी ! "इसी लिये मांस भक्षण न कभी आ०समाज का मत न हुआ न है" क्या यह तुम्हारा लिखना कोई वेदमन्त्र है जो प्रमाण होजाय !। स्वा०द० तो स्वयं लिख गये हैं कि "यदि कोई भी मांस न खाय तो जीव जन्तु इतने बढ़े जो मनुष्यों को भी खाजाय" इस से आया कि मांस खाना चाहिये यह मत किस का है !। और तु०रा० ने अपने वाक्य में भी ऊपर देखो दो नकार एक की जगह लिखेहैं जिसका अर्थ होगया कि मांसभक्षण आ०समाजका कभी मत न हुआ सो नहीं किन्तु मांसभक्षण मत है ही। प्रकाशानन्द को क्या कृपाराम पञ्जाबी को भी तो दुराचार के कारण पृथक् करने का नोटिस छापा गया पर वे लोग अब तक भी आ० समाज में टांग अड़ाये हैं नोटिसों को कौन पूछता है। नोटिस कोई तोप के गोले तो नहीं है ?। बंगालियों का शोक स्वा० द० के मतानुसार है सनातन धर्म से कुछ सम्बन्ध नहीं है

मुक्ति से पुनरावृत्ति ॥

आ० स० पृ०५५६ आदि में प० गणेशदत्त शास्त्री का लेख छपा है। उक्त शास्त्री जी ने छहों दर्शनों से मुक्ति पूर्वाङ्कों में सिद्ध करदी है जिन दार्शनिक अंशों का उत्तर देने की आज तक तु० रा० को शक्ति नहीं है। अब उस लेख के आदि में "गुरुभ्योनमः" छपने से भ्रम क्या हुआ कि ये कोई भी० श० के शिष्य हैं। क्या लेखक अपने लेख के आरम्भ में अपना जो कोई गुरु हो उस को नमस्कार नहीं लिख सकता ?। जब लिख सकता है तो युक्ति विरुद्ध मिथ्या कल्पनाओं का ठेका भी तो तु० रा० ने ही संप्रति लिया है तब वे ऐसा न लिखें तो कौन लिखे।

न वै तत्र निम्लोच नोदियायकदाचन ॥

इत्यादि छान्दोग्य का प्रमाण लिख कर तु० रा० मुक्ति से पुनरावृत्ति सिद्ध करना चाहते हैं। सो यह आकाश पुष्प के समान है। इस प्रमाण के अर्थ में तु०रा० कहतेहैं कि स्वा० शंकराचार्यजी ने ब्रह्मलोकसे पुनरागमन लिखा है। सोश्री शंकराचार्य जी का लिखना तो सर्वथा सत्य है पर तुमको आगा पीछा नहीं दीखता इससे टकरा २ के बार २ गिरते हो। ब्रह्म लोक तक जाने का नाम मुक्ति नहीं है ब्रह्म लोक सप्त आकाश के अन्तर्गत होने से स्वर्ग के अन्तर्गत स्वर्ग की सीमा पर है। वहां तक से पुनरावृत्ति की कहनी तो पहिले से ही अति प्रसिद्ध पुस्तकों में भी पिट चुकी है देखो।

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्त्तिनोऽर्जुन ॥

हे अर्जुन ब्रह्मलोक पर्यन्त में जो जाते हैं उन सब की पुनरावृत्ति होती है किन्तु मुझ को साक्षात् जानते प्राप्त होने वालों की फिर कभी पुनरावृत्ति नहीं होती । इसी के अनुसार आगे २ लिखे वायु पुराणादि के प्रमाणों का भी एक २ प्रकार के स्वर्ग से पुनरावृत्ति दिखाने का तात्पर्य सर्व सम्मत है उन को मुक्ति में घमीटना केवल वे समझी है इस लिये यहां उन सब के ऊपर पृथक् २ व्यवस्था लिखना आवश्यक नहीं है ॥

तु० रा० की पोल

वे० म० पृ० १५ में पद्मपुराण के तीन श्लोक लिखे हैं । जिन का मतलब यह है कि राजा दिलीप ने वसिष्ठ जी से पूछा है कि भादों महिने के कृष्ण पक्ष की अष्टमी को कृष्ण भगवान् साक्षात् विष्णु का अवतार किस कारण किस काम के लिये हुए ? । इस पर तु० रा० का तर्क यह है कि राजा दिलीप जी महाराजा रामचन्द्र जीके पड़दादा त्रेतायुग में हुए थे । उन्हों ने द्वापर के अन्त में आगे होने वाले कृष्ण जन्म की कथा कैसे पूछी ? ।

उत्तर—इस का संक्षेप समाधान यह है कि तुम लोग जब तक असत्य वेद विरुद्ध मत से घृणा कर पृथक् न होगे तब तक पुराणों का आशय समझने योग्य कदापि नहीं हो सकते । तुम मानते हो कि ब्रह्मा के प्रत्येक कल्प में चौदह मन्वन्तर होते हैं । जब प्रत्येक मन्वन्तर में ७१ चतुर्युगी होती तो प्रत्येक कल्प में ९९४ चतुर्युगी हुई । चाहे यों कहो कि ९९४ बार प्रत्येक कल्प में द्वापर त्रेतादि युग बीत जाते हैं । प्रत्येक त्रेता में ज्यों का त्यों रामावतार होता और प्रत्येक द्वापरान्त में कृष्णावतार होता है । और रावण कंसादि भी वैसे ही ज्यों के त्यों होते हैं । तब पूर्व की अनेक चतुर्युगियों के अनेक द्वापरों में कृष्णावतार हो चुका था जिस को वसिष्ठ तथा राजा दिलीपादि सब जानते थे । क्योंकि—

यदायदाहिधर्मस्य ग्लानिर्भवतिभारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानंसृजाम्यहम् ॥१॥
परित्राणायसाधूनां विनाशायचदुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामियुगेयुगे ॥ २ ॥
बहूनिमेव्यतीतानि जन्मानितवचार्जुन । शेष आगे

॥ आर्यमत वाले उपदेशकों के पास पूर्वपक्ष शंका ॥

वेदभाष्य भूमिका पृ० १८२ पं० १० वीं से न्यायद० अ० १ आन्हिक १ सू० २। २१। "दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापायादपवर्गः। १। बाधनालक्षणं दुःखमिति। २१। तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्गः" इन सूत्रों के भाष्य में दयानन्द ने लिखा है कि जब जीव को अविद्या नष्ट हो जाती है तब जीव का फिर जन्म नहीं होता इसी से सर्व दुःखों का अत्यन्ताभाव हो जाता है इस लेख का गूढ़ सिद्धान्त यह है कि आर्य्यमत में न्यायदर्शनोक्त मुक्ति को इष्ट माना है मुक्ति के समय आर्य्य जीवों के अविद्या पुनर्जन्म और सर्वदुःख नष्ट हो जाते हैं फिर उस के विरुद्ध ५ वीं बार का छपा सत्यार्थ प्रकाश पृ० ५९ पं० २८ वीं से न्यायद० अ० १ आन्हि० १ सू० १८ "इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनोलिङ्गमिति" इस के भाष्य में इच्छा द्वेष प्रयत्न सुख दुःखादि को आत्मा के गुण लिखा है न्यायमत में गुण गुणी का नित्यसमवाय संबंध है इस से जब तक आर्य्यमत वाले आत्मा रहेंगे तब तक किसी के दुःख नष्ट न होंगे इस से किसी आर्य्यमत वाले आत्मा की मुक्ति न होगी यदि मुक्ति के लोभ से दुःखों का नाश मानें तो साथ आर्य्य आत्मा भी नष्ट हो जांयगे किंच पांचवां सत्या० पृ० १८ पं० २२ वीं से० अविद्या को भी जीवात्मा का गुण लिखा है इस से आर्य्यमत वाले आत्माओं की अविद्या भी नष्ट नहीं हो सक्ती इसी से दयानन्द से लेके आर्य्यमत वाले आत्मा विद्वान् नहीं हो सक्ते इसी सत्यार्थ प्रकाश का पृ० १३१ पं० १७ वीं से मुण्ड० ख० २ म० ८।९॥

अविद्यायामन्तरे वर्त्तमानाः स्वयंधीराः पंडितम्मन्यमानाः।
जङ्घन्यमानाः परियन्ति मूढाअन्धेनैवनीयमानायथान्धाः॥१॥
अविद्यायां बहुधावर्त्तमाना वयं कृतार्थाइत्यभिमन्यन्ति बालाः। यत्कर्म्मिणो न प्रवेदयन्ति रागात् तेनातुराः क्षीणलोकाश्च्यवन्ते ॥

इस के भाष्य में कहा है कि जो अविद्या में खेल रहे और अपने को पण्डित मानते हैं वह वैसे नीच गति को जाते हैं जैसे अन्धे के पीछे अन्धे दुर्दशा को प्राप्त होते हैं। इस लेख से आर्य्यमत में पण्डित नास्ति हैं। क्योंकि

आर्य्य जीवों का अविद्या गुणहै वैसेही.यदि ईश्वर को एकदेशी कहैं तो ईश्वर अल्पज्ञ अल्पशक्तिमान् होगा यदि सर्वव्यापक कहैं तो ईश्वर अविद्या के भीतर भी व्यापक होगा यदि ऐसेही मानें तो आर्य्यों का ईश्वर अविद्या के भीतर खेलने वाला सिद्ध होगा उनसे वह ईश्वर भी पवित्र नहीं होसक्ता । किंच ईश्वर के ज्ञान इच्छा प्रयत्न नित्य हैं अथवा अनित्य यदि नित्य कहें तो जगत् के उत्पत्ति प्रलय पालन और शीतोष्णादिक ईश्वर के ज्ञान इच्छा प्रयत्न से होते हैं अथवा नहीं यदि नहीं कहो तो ईश्वर कर्म फल प्रदाता न होगा यदि कहो कि ईश्वर के ज्ञान इच्छा प्रयत्न ही से जगत् के उत्पत्यादि होते हैं तो सदा काल जगत् की उत्पत्ति वा पालन अथवा प्रलय किंवा शीतोष्ण होने चाहिये क्योंकि ईश्वर के ज्ञान इच्छा प्रयत्न नित्य हैं यदि कहो कि ईश्वर के ज्ञान इच्छा प्रयत्न उत्पत्ति वाले अनित्य हैं तो उत्पत्ति से पहिले ईश्वर अज्ञानी और निकम्मा होगा। ईश्वर को अज्ञानी निकम्मा मानें तो वेद से विरोध होगा और जीव से ईश्वर में विशेषता का लाभ न होगा यदि कहो कि ईश्वर ने एक बार जैसे जगत् की उत्पत्यादिकों को ज्ञान इच्छा प्रयत्न गोचर कर रक्खा है वैसे होते जाते हैं इतना काल उत्पत्ति इतना काल स्थिति इतना काल प्रलय इतना काल शीत इतना काल उष्णादि होवें तो सन्देह यह हो सकता है कि उस से पहिले भी ईश्वर ज्ञान इच्छा प्रयत्न से रहित होसकता है क्योंकि यदि ईश्वर के ज्ञान इच्छा और प्रयत्न अनादि नित्य हैं तो ऐसा समय कोई भी सिद्ध नहीं हो सकता कि जिस समय ईश्वर ने जगत् की उत्पत्यादिकों को ज्ञान इच्छा और प्रयत्न के गोचर करा है। युक्ति से भी जगदुत्पत्यादिकों की व्यवस्था ठीक नहीं होसकती जैसे कि जगदुत्पत्ति के समय यदि माता पिता के रजवीर्य्य द्वारा नरनारी की उत्पत्ति मानें तो जगत् का आरम्भ न होगा किन्तु साबित यह होगा कि नरनारी सदा से चले आये और चले जायंगे यदि कहें कि आदि सृष्टि के नरनारी माता पिता के रजवीर्य्य से बिना ही हुए हैं तो पदार्थ विद्या और प्रत्यक्षादि प्रमाणों से विरोध होगा क्योंकि प्रत्यक्षादि प्रमाणों से देखा जाता है कि माता पिता के रजवीर्य ही से नरनारी का जन्म हो सकता है डाक्टरी विद्या से भी यही सिद्धान्त सिद्ध होचुका है। यदि पदार्थ विद्या और प्रत्यक्षादि प्रमाणों से जगत् की उत्पत्ति ही सिद्ध नहीं होती उसी से स्थिति और प्रलय भी सिद्ध नहीं

हो सकते किन्तु सदा से जगत् चला आया और चला जायगा । किन्तु ईश्वर प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध है वा अनुमान वा उपमान अथवा शब्द प्रमाण से ईश्वर सिद्ध होता है । यदि प्रत्यक्ष प्रमाण से कहो तो न्यायमत में प्रत्यक्ष प्रमाण श्रोत्रादि पांच ज्ञानेन्द्रिय और छठा मन छः प्रकार का है श्रोत्रादि पांच ज्ञानेन्द्रियों से शब्दादिक पांच विषयों ही का ज्ञान होता है शब्दादिक विषय जड़ हैं ईश्वर को न्यायमत में चेतन मानते हैं उस से श्रोत्रादि इन्द्रिय गोचर ईश्वर नहीं यदि कहो कि मन प्रमाणजन्य यथार्थ ज्ञानगोचर ईश्वर है सोभी ठीक नहीं क्योंकि मन प्रमाणजन्य ज्ञानगोचर भी साकार सावयव पदार्थ हो सकता है । ईश्वर को आर्यमत में निराकार निरवयव माना है उस से मानस प्रत्यक्ष प्रमाणगोचर भी ईश्वर नहीं हो सकता । यदि कहो कि जैसे सुख दुःख निराकार निरवयव हैं परन्तु मानस प्रत्यक्ष प्रमाणगोचर अनुभव सिद्ध हैं । वैसे ही ईश्वर भी निराकार निरवयव है परन्तु मानस प्रत्यक्ष प्रमाणगोचर हो सकता है सो भी ठीक नहीं क्योंकि न्यायमत में सुख दुःख आत्मा के गुण हैं उन का मानस प्रत्यक्ष नहीं हो सकता क्यों कि न्यायमत में परम अणु मन है और आत्मा सारे शरीर में व्यापक है परम अणु मन से एक ही समय सारे शरीर के सुख दुःख का ज्ञान होना असंभव है यद्यपि किन्हीं नैयायिकों के मत में आत्मा अनेक और विभु हैं तथापि आत्मा को अनेक मान कर विभु कहें तो कर्मसंकर दोष आसकता है यदि आत्मा को शरीर जितना कहें तो यह निश्चय न होगा कि कौनसा शरीर जितना आत्मा है । यदि आत्मा को चेतनस्वरूप कहैं तो आत्मा एकदेशी नहीं हो सकता । यदि चेतन स्वरूपमान कर आत्मा को एकदेशी कहैं तो ईश्वर भी एकदेशी होगा क्योंकि ईश्वर भी चेतन स्वरूप है यदि आत्मा को जड़ कहैं तो उसको सुखदुःख का ज्ञान न होगा और आत्मा जड़ होने के कारण उत्पत्ति नाश वाला होगा अभिप्राय यह कि मानस प्रमाणगोचर भी ईश्वर नहीं किंच पाचवां स० पृ० ५४ पं० ४ से न्यायद० अ० १ आह्निक १ सू० ४ ॥

इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यभिचारि व्यवसायात्मकम्प्रत्यक्षम् ॥

इसके भाष्य में दयानन्द ने लिखा है कि जो श्रोत्रादिक इन्द्रियों का शब्दादिक विषयों के साथ आवरण रहित संबन्ध होता है इन्द्रियों के साथ मन का और

मन के साथ इन्द्रियों का संयोग हो कर जो ज्ञान उत्पन्न होता है उसी को प्रत्यक्ष कहते हैं यहां आर्य्यमतवालों से पूछना चाहिये कि पूर्वोक्त न्याय सूत्र में प्रत्यक्ष प्रमाण का लक्षण है अथवा प्रत्यक्ष प्रमा का यदि कहो कि सूत्र में प्रत्यक्ष प्रमा का लक्षण है तो कहिये प्रत्यक्ष प्रमाण का लक्षण कौन से सूत्र में है यदि कहो कि प्रत्यक्ष प्रमाण के लक्षण में कोई भी सूत्र प्रमाण नहीं तो प्रत्यक्ष प्रमाण का लक्षण भी खरशृंग के समान असंगत होगा क्योंकि पदार्थ विद्या से सिद्ध हो चुका है कि प्रमाण ही से प्रमा ज्ञान होता है सूत्र में प्रत्यक्ष प्रमाज्ञान का लक्षण तो लिखा है परन्तु प्रमा के करण प्रत्यक्ष प्रमाण का लक्षण नहीं लिखा इसमें सूत्रकार की भूल है यदि कहो कि सूत्र में इन्द्रिय शब्द पड़ा है इन्द्रिय ही प्रत्यक्षप्रमाण है सो भी ठीक नहीं क्योंकि सूत्र में ज्ञान शब्द भी है इससे सूत्र में प्रत्यक्ष प्रमा ज्ञान ही सिद्ध होता है यदि कहो कि आकांक्षा न्याय से प्रत्यक्ष शब्द का इन्द्रिय और ज्ञान दोनों से सम्बन्ध है इस से सूत्र में प्रत्यक्ष प्रमाण और प्रत्यक्ष प्रमा दोनों सिद्ध होते हैं सो भी ठीक नहीं क्योंकि दयानन्द ने इन्द्रिय संयुक्त मनः संयुक्त आत्मसंयुक्त से जो ज्ञान हो को प्रत्यक्ष कहा है इस से भी आर्य्यमत में प्रत्यक्ष प्रमाण का लक्षण नास्ति है। किंच न्यायमतमें एक समय प्रत्यक्ष इन्द्रिय संयुक्त मनःसंयुक्त आत्मसंयुक्त प्रत्येक विषय का ही प्रत्यक्ष प्रमाज्ञान हो सक्ता है परन्तु दयानन्द ने सूत्र के अर्थ में शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध के साथ इन्द्रियों का आवरण रहित सम्बन्ध लिखा है सो दयानन्द की अविद्या है क्योंकि कारण गोलकस्थ आकाश ही को नैयायिक श्रोत्रेन्द्रिय कहते हैं उससे श्रोत्रेन्द्रिय और आकाश का संबन्ध तो नास्ति है। रहे त्वक् आदिक चार इन्द्रिय इन का भी स्वस्वविषय के साथ आवरण रहित सम्बन्ध नास्ति है। क्योंकि त्वक् इन्द्रिय कोमल कठोर शीत उष्ण गुण युक्त द्रव्य के साथ है स्पर्शादि विषयों से त्वक् आदिक इन्द्रियों का संयुक्त समवाय संबन्ध संयोग हो सक्ता है। आवरण रहित संबन्ध नहीं हो सक्ता परन्तु यहां न्यायमत में त्वगादिक इन्द्रियों का जो स्पर्शादिक गुण युक्त द्रव्य हैं उन से संयोग संबन्ध कहा है संयोग की उत्पत्ति लिखी है संयोग ही को नैयायिक व्यापार कहते हैं (तज्जन्यत्वे सति तज्जन्यजनको व्यापारः) इसका अभिप्राय यह है कि जो कारण से उत्पन्न होकर कारण के कार्य्य की उत्पत्ति करे वह व्यापार कहाता है जैसे त्वक् आदिक इन्द्रियों का पुष्पादिक द्रव्योंके

साथ संयोग होता है वह संयोग त्वक् आदिक इन्द्रियों से उत्पन्न होता है और त्वाच प्रत्यक्ष प्रमाको उत्पन्न करता है इसी से न्यायमत में वह संयोग व्यापार है (व्यापारवत् असाधारणं कारणं करणम्) इस का सिद्धान्त यह है कि संयोगरूप व्यापार वाले त्वगादिक इन्द्रिय प्रत्यक्ष प्रमाके करण हैं परन्तु व्यापार का पूर्वोक्त लक्षण अव्याप्ति दोष युक्त है इसी से वह असद् लक्षण है असद् लक्षण से स्वाश्रयलक्ष्य का ज्ञान नहीं हो सक्ता मतलब यह कि त्वक्आदिक चार इन्द्रियों का तो पुष्पादिक द्रव्यों के साथ संयोग सम्बन्ध उत्पन्न हो सक्ता है परन्तु शाब्दीप्रमा में श्रोत्रेन्द्रिय का आकाश से संयोग नास्ति है। क्योंकि न्यायमत में आकाश स्वरूप ही श्रोत्रेन्द्रिय है श्रोत्रेन्द्रिय से शब्द का नित्य समवाय संबन्ध है यद्यपि श्रोत्रेन्द्रिय का संयोग मन इन्द्रिय से हो सक्ता है तथापि वैसे तो त्वगादिक इन्द्रियों से भी मन का संयोग हो सक्ता है यदि सूक्ष्म विचार किया जावे तो (इन्द्रियार्थ०) इस सूत्र में प्रत्यक्ष प्रमाण का लक्षण नास्ति है। प्रत्यक्ष की सहायता ही से अनुमानादि प्रमाण सफल होते हैं प्रत्यक्ष की नास्ति से अनुमानादि भी सफल नहीं हो सक्ते इस से दयानन्द ने जो न्यायमत की रीति से आत्मा का स्वरूप लक्षण लिखा है उस से जीवात्मा की सिद्धि नहीं हो सक्ती। वैसे ही आर्यमत में न्याय रीति से ईश्वर भी किसी प्रमाण से सिद्ध नहीं हो सक्ता क्या कि शब्द प्रमाण की सिद्धि में भी आप्त प्रमाण की आवश्यकता है परन्तु न्यायसूत्रों से आप्त प्रमाण भी सिद्ध नहीं हो सक्ता। दयानन्द ने प्रत्यक्ष प्रमाण की परिक्षा से सत्य लिखा था परन्तु लक्षण प्रत्यक्षप्रमाका लिख दिया है न्यायमत से घटत्व पटत्वादि जाति को नित्य माना है सो भी ठीक नहीं क्योंकि जब घटपटादिक व्यक्तियां उत्पत्ति नाशवाली हैं तो उन के आश्रय घटत्व पटत्वादिक जातियां भी नित्य नहीं हो सक्ती आकाशादिकों को न्यायमत में नित्य माना है सो भी ठीक नहीं क्योंकि श्रुति से आकाशादिकों की उत्पत्ति लिखी है ऊपर नीचे आकाश के देश भी सिद्ध होते हैं इस से आकाश सावयव पदार्थ है इस से भी आकाश अनादि अनन्त नहीं हो सक्ता यदि परमाणुओं के भीतर आकाश है तो परमाणु भी पोल सहित हैं इस से परमाणु भी उत्पत्ति रहित नहीं हो सक्ते जीव के भीतर ईश्वर को मानें तो जीव पोल सहित है इस से जीव भी उत्पत्ति नाश वाला साबित हो सक्ता है यदि जगत् का उपादान कारण साकार सावयव मानें तो छिन्न भिन्न होता २ उपादान कारण कुता के सीग समान नास्ति हो सक्ता है। निराकार निरवयव

समवायी कारण से साकार सावयव जगत् होही नहीं सक्ता ईश्वर को उपादान कारण कहें तो ईश्वर भी साकार सावयव हो सक्ता है। यदि वैसे हीमानें तो छिन्न भिन्न होता २ ईश्वर भी गधा के सींग समान नेस्त नाबूद हो सक्ता है। अभिप्राय यह कि दयानन्द ने जो न्यायमत को माना है उसी से दयानन्द मत वेदके विरुद्ध है किन्तु वेदान्तमत ही वेदोक्त और निर्दोष है क्योंकि पदार्थ विद्या से साबित है कि जैसे स्वप्न के जीव ईश्वर और जगत् अनिर्वचनीय कल्पित हैं वैसे ही जाग्रत के भी जीव ईश्वर और जगत् कल्पित हैं वेदान्तमत में एक शुद्ध ब्रह्म चेतन सर्व का द्रष्टा ही त्रिकाल अबाध्य है। दयानन्द ने ११ वें समुल्लास में कहा है कि जो जाग्रत के पदार्थ हैं स्वप्न में उन्हीं का ज्ञान होता है सो भी ठीक नहीं क्योंकि जाग्रत् के पदार्थों के साथ नेत्रादिक इन्द्रियों का संयोग नास्ति है। स्वप्न के समय नेत्रादिक इन्द्रियों का संयोग घटादिक पदार्थों के साथ अनुभव सिद्ध है यदि कहो कि जो जाग्रत् पदार्थों के संस्कार हैं वही स्वप्न के समय घटादिक होकर दिखाई देते हैं सो भी ठीक नहीं क्यों कि संस्कार शरीर के भीतर अन्तःकरण अथवा जीवात्मा में है परन्तु स्वप्न के पदार्थ शरीर के बाहर भान होते हैं यदि कहो कि निद्रा दोष से शरीर के बाहर पदार्थ प्रतीत होते हैं सो भी ठीक नहीं क्यों कि स्वप्न के समय निद्रा दोष प्रतीत नहीं होता किन्तु जैसे जाग्रत् के पदार्थों का ज्ञान है वैसे ही स्वप्न के समय स्वप्न पदार्थों का ज्ञान है यदि स्वप्न के पदार्थों का ज्ञान निद्रा से मानें तो जाग्रत् के पदार्थों का ज्ञान भी निद्रा दोष से सिद्ध होगा यदि सूक्ष्म विचार किया जावे तो जाग्रत् और स्वप्न जगत् की कुछ भी विलक्षणता सिद्ध नहीं हो सक्ती सुषुप्ति में किसी पदार्थ के साथ भी नेत्रादिक इन्द्रियों का संयोग नहीं होता इसी से सुषुप्ति के समय किसी पदार्थ का भी ज्ञान नहीं हो सक्ता किन्तु सुषुप्ति के समय केवल आत्मा और अज्ञान का भान होता है उसी से जाग्रत् के समय आत्मसुख और अज्ञान की स्मृति होतीहै क्यों कि सुषुप्ति के समय विषय जन्य सुख का ज्ञान नहीं होता तीनों अवस्थाओं का साक्षी एक शुद्ध ब्रह्म चेतन ही द्रष्टा है वही त्रिकाल अबाध्य है नाम रूप और क्रियात्मक दृश्य कुत्ता के सींग समान नास्ति है शेष आगे

आप का शुभचिन्तक

पण्डित अनन्तराम द्विवेदी प्रयाग

अपेक्षित आवेदन ॥

प्रियवर कुन्दनलाल जी महाशय ! आप ने मेरे लेख के उत्तर में लिखा कि सम्पूर्ण पत्रों के ही राजाओं के शुभचिन्तक होने से श्री वें० स० ही राजपत्र क्यों कर हुवा? किन्तु निःसन्देह इस में आप भूल गये, लेख में लिखा था „श्री वेङ्कटेश्वर सदृश राजपत्रों को ऐसे सड़ीले लेखों पर दृष्टि डालने की फुरसत नहीं" इस से यह न सिद्ध होता था कि „श्री वें० के सिवाय और कोई राजपत्र नहीं क्योंकि बहुवचन का प्रयोग था इस लिये आप कोई ऐसा अञ्जन बनवाइये कि जिस से आप के नेत्रों का इतना बड़ा विकार दूर हो जाय यदि आप बुरा न मानें तो यह सत्य धर्म- विषयक वाद है इस में अन्धे लोगों से काम नहीं चल सक्ता श्री वे० स०" की तरह सभी पत्र राजाओं के मात्र शुभसम्मति सूचक हैं अथवा „ ब्राह्मणसर्वस्वादि का उद्देश्य कुछ उस से भिन्न भी है ? और सब पत्र शुभचिन्तक ही हैं न कि-शुभ-सम्मति -सूचना से भी शुभचितकता दिखाते हैं यह भी आप को न दीखा खेद है कि-ऐसी क्षुद्र बुद्धि रख कर भी आप लोग सत्य-सेवकों के सन्मुख वारम्वार लेखनी उठाते हैं । सम्पूर्ण प्रश्न-पूर्ण तर्कों के उत्तर में कुछ भी छेद भेदन करके अथवा यों कहिये कि-अपने उठाये हुये प्रश्नों के उत्तरों में भी मौन साधकर फिर भी नये नये तर्क उठाने में वेदप्रकाश और ब्राह्मण-सर्वस्व के पाठक आप लोगों की बुद्धि का गौरव अच्छी प्रकार समझ लेंगे । इस प्रकार नियत विषय की बात चीत से भगना सर्वसाधारणों में यह जमा देगा कि-आर्य-समाजी सत्य-धर्मियों की निगाह से निरन्तर ही इसी तरह निकल जाया करते हैं ।

फाल्गुण शब्द के बारे में भी आपने व्यर्थ ही झञ्झट उठाया शब्द शास्त्र के रहते हुये शब्दों की शुद्धाशुद्धि पर वाद चला कर आप क्या कुछ सफलता लाभ कर सक्ते हैं ? यह तो आप आपस ही में किसी से पूछते तो भी उत्तर मिलजाता मैं भी आप को एक युक्ति बतलाता हूं-हिन्दी लेख में आपकी शंका हास्य जनक है । हिन्दीमें संस्कृत शब्दों की शुद्धि से सम्बन्ध नहीं रहता । अलबत्तानागरी के सम्बन्ध में आप कुछ लिखते तो द्रष्टव्य भी होता निश्चय ही आप लोग कभी हिन्दी के समाज में नहीं बैठे आप ही आप मनमानी चाल से मनमाने मत के लेख लिखने लगे और लगे अखबार नवीसी करने तब(orginel)ओर्जिनल हिन्दी के गुण दोषों का मान आप लोगों को

क्यों कर हो ? अभिमत वाद को छोड़ कर विषयान्तरों में शास्त्रार्थ उठाकर "ब्राह्मणसर्वस्व जैसे सर्व–हित–वादी पत्रों के पृष्ठ भरना हम अच्छा नहीं समझते फिर भी शब्द शास्त्रार्थ से। मैंने तो आप लोगों को आर्य–समाज का सुशिक्षित समझकर उस के कुछ नियमों को संशोधित करके "सत्य और सनातन आर्य-धर्म–सगठन में "उस समाजको मिलाकर सार्वजनिक भारतवर्ष की धर्मोन्नति की कामना से ही लिखा पढ़ी की थी। जिस बात का मैं एकान्त पक्षपाती अभिलाषी हूं और इसी कारण मैं धर्म–सम्बन्धी लेखों तथा समाचार की भी शरण लेता हूं अतएव इस बारे में आप को जो समझ पड़े, लिखिये इन बातों को लिख लिख कि- "अमुक का नाम वाणी–भूषण क्यों हुआ ? उसे विद्यावारिधि की पदवी किसने दी ? वह शास्त्री क्यों कर बन गया ?। कहिये तो भला इन बातों का उत्तर ही लेकर आप कौन सी धर्मोन्नति कर सकेंगे और इस से कौन से वेद का प्रकाश होगा ?

धर्मोन्नतिकामी पं० शिवचन्द्र शास्त्री ॥

जमालपुर-मैमनसिंह (बंगाल ॥

श्री रामजी ।

(वे० प्र० भा० ९ अं० ५ के प्रेरित पत्र का मुखमर्दन शस्त्र)

एक समय में एक गुप्त नामक महाशय सनातन धर्म समुद्र के अंदर किलोल कर रहा था एक दिन अचानक ब्राह्मण सर्वस्व नामक हस्ती को देखा कि जिसके कर्मकांड सूंड यज्ञ कर्म और देवपूजन ये दो दांत, विद्या, बुद्धी दो नेत्र, गूढ़ प्रश्न और प्रबल उत्तर ये दो विशाल कान सत्य धर्मका मस्तक अहिंसा कंठ, धर्म विषय शंका समाधान प्रेरित पत्र शुभ समाचार ये चार पैर विज्ञापन पूंछ लगी हुई, धर्मोन्नती मूल १८ पुराण १८ उपपुराण ये ३६ प्रकार के गोटा किनारी १८ स्मृती १८ प्रकार के फूल गुथे हुए ज्ञानोपदेशका हौदा रखा हुआ जिसमें ४ वेद की चार किनार ४ उपवेद चारों कोने ६ छः शास्त्र ही ६ प्रकार की मणी जड़ी हुई ब्राह्मण ग्रंथ रूपी रत्न जड़े हुये सत्योपदेश का छत्र धर्म समाचार का चंवर देशोन्नती का झंडा लगा हुआ दया धर्म का घंटा गले में बंधा हुआ भीमसेन शर्मा फीलवान बैठा हुआ जिसके एक हस्त में शास्त्र प्रमाण रूप अंकुश और दूसरे हस्तमें बड़ी भारी युक्ती रूप गदा है ऐसे सुन्दर हस्ती पर श्रीआनन्द कन्द सच्चिदानन्द मथुरा मुकुन्द श्रीगोविन्द

भगवान् विराजमान हैं ऐसे अद्भुत हस्ती को वह गुप्त महाशय देख चका चौंध हो गया । कुछ देर में कुछ होश में आ अपनी बुद्धी को उस सुन्दर हस्ती पर बिठाने के वास्ते छलांग मारी लेकिन कमबुद्धी होने के कारण नीचे गिरपड़ी और हस्ती के पैरों से कुचलने का भय कर पिछले पैर गप्प समाज नामक खड्डे में मूर्छित होकर गिर पड़ा उस खड्डे में भेदप्रकाश नामक मेंडक देखा जिस पर शुक्राचार्य सवार थे कुछेक देर में सम्हल कर वह गुप्त महाशय उस शुक्राचार्य से बोला कि हम इस जगह पर रहना चाहते हैं। शुक्राचार्य बोला कि भाई हमारे यहां तो भूखे नगे नकटे बूचे काने खोड़े लूले लंगड़े तथा आंख के अन्धे गांठ के पूरे तथा नीच जाति के पुरुष आया करते हैं क्योंकि हमारे यहां उन पुरुषों का मान बहुत अधिक होता है सो आप सब तरह करके उत्तम किस प्रकार यहां आये सो कारण कहो गुप्त महाशय बोला कि सुनो शुक्राचार्य जी सनातनधर्म समुद्र में एक बड़ा बलवान् और बहुत बड़ा और बहुत मनोहर कि जिस की मैं कुछ प्रशंसा नहीं कर सकता ऐसा हस्ती आया मैं उस हस्ती के ऊपर अपनी बुद्धी को छलांग मार कर बिठाया लेकिन कम बुद्धी होने से उस बड़े हस्ती पर न बैठ सकी इस वास्ते अब मैं आप के पास आया हूं आप इस मेंडक पर बैठने को जगह दीजिये शुक्राचार्य बोले अहो आज हमारे बड़े भाग्य जो आप पधारे आप की बुद्धी की कौन कहे हमारे यहां बड़ेसे बड़े मूर्ख पुरुषों को भी जगह मिलती है आप आराम से रहिये इतना सुन वह रहने लगा एक दिन वह गुप्त महाशय उस मेंडक पर बैठ प्रेरितपत्र नामक तीर मारा उस का सारांश यह था कि सनातनधर्म समुद्र और वह ब्राह्मण सर्वस्व हस्ती बड़े निर्दई यानी हिंसक हैं (क्योंकि मेरी बुद्धी को बैठने को जगह उस हस्ती पर न मिली) इस वास्ते अब मैं गप्प समाज नाम खड्डे में मैढ़िक भंडे की शरण आया हूं (क्योंकि यहां पर शुक्राचार्य ने अपने मेंडक पर मेरी बुद्धी को बिठा लिया) ये मेंडक और शुक्राचार्य और इस खड्डे के निवासी सभी दयावान् हैं मैं बड़े आराम से यहां रहता हूं इस तीर को देख एक सनातनी महाशय प्रेरितपत्र मुखमर्दन शब्द जवाब में देना मुनासिब समझ कर बताया कि सुनो गुप्त महाशय जी आप के गप्प समाज की बराबर तो कोई भी धर्महिंसक नहीं । संसार के सभी धर्मों से बढ़ बढ़ कर आप के गप्प समाज में हिंसा भरी हुई है क्योंकि खड्डे के खोदने वाले स्वामी ने अपनी मिथ्यात्वप्रकाश में लिखा है कि जो जीवों को न मारे तो जीव इतने

बढ़ जांय कि मनुष्यों को मारने लग जांय इस वास्ते जीवों को मारना चाहिये । कहिये महाशय जी क्या इसी को अहिंसा धर्म कहते हैं अगर आप कहो कि पहिला मिथ्यात्वप्रकाश रद्दी कर दिया है तो बताइये ये कहां लिखा है कि पहिला मि०प्र० रद्दी है महाशय जी अगर कहीं मि०प्र० की रद्दी के वास्ते लेख या नोटिस होता तो गप्प समाज में मांसपार्टी का फिर्का खड़ा न होजाता । महाशय जी आप के इस गप्पसमाज में तो ग्यारह २ पती कराना मूर्त्तिपूजन श्राद्धादि सत्कर्मों को छुड़ाना भंगी चमारों के साथ खान पान विवाह शादी करना कराना यही उपदेश है क्या इसी को मैदिकभंडा कहते हैं क्या (आपने) इसी मैदिक भंडे की शरण ली है अगर इसी की शरण ली है तो आप की बुद्धी का क्या ठिकाना है (गुप्त जी आप सनातन धर्म का कुछ भी तत्त्व न जान कर दिल्ली के पाच सवारों में गिनती गिनाने के वास्ते लार टपकाते हुए खड्डे में जा पड़े) महाशय जी अगर आप जरा भी गौर करके देखते तो मालूम हो जाता कि सत्य धर्म के कारण हरिश्चन्द्रादि राजा दान धर्म के कारण बली और कर्णादि राजा प्रण रखने के कारण नलादि राजा अहिंसाधर्म और दयाधर्म के हेतु सिवी और युधिष्ठिरादि राजाओं ने कैसे२ कष्ट सहकर धर्म की रक्षा की अब भी हजारोंही विद्यमान हैं देखो दीनदयालु और हासानंद और ज्वालाप्रसाद जिन्होंने अनेकानेक कष्ट सहकर जगह २ गोशालायें खुलवादी हैं और अनेक पिंजरा पोल भी खुल गये हैं ब्यावर निवासी सेठ जी दमोदरदास जी को ही देखिये जिन्होंने (दो बकरे एक गौ चौगुणा मूल्य देकर कसाई के हाथ से छुड़ाया) १००) नागरी प्रचारिणी सभा को और ५००) रुपये कलकत्ते की कृष्णगोशाला को देकर कितना देश का उपकार किया है और ११००) रुपये का ब्यावर के अस्पताल में एक मकान बनवा कर कितने प्राणियों का भला किया है आप सहज ही में विचार सक्ते हैं आज कल वर्त्तमान कलियुग में भी सनातन अहिंसा धर्म की दशा सब से बढ़ चढ़ कर है हरएक एकादशी को तथा पूर्णिमा को हलवाई भट्टी नहीं जलाते सुनार अंगीठा नहीं सुलगाते गृह में स्त्रियां चक्की नहीं पीसती चूल्हा भी नहीं जलाते व्रत करके फलाहार करते हैं दया बहुत रखते हैं जगह २ हिंसा से बहुत डरते हैं परोपकार बहुत करते हैं सनातन धर्मियों ने ही ब्राह्मण भोजन तथा हवन यज्ञादि के वास्ते तीर्थ और क्षेत्रों में साधुसंतों के वास्ते हजारों लाखों रुपेया बैंक में ज-

ना करा रक्खा है। जगह २ तीर्थों में तथा क्षेत्रों में तथा रस्ते में सदावर्त लगा रखा है। जगह २ कूआ बावड़ी बाग बगीचे जगह २ धर्मशालायें गौशालायें विद्याशालायें खोल रक्खी हैं ये सब अहिंसा रूप दया धर्म का चिन्ह है महाशय जी, क्या कहीं किसी गप्पी ने भी तथा गप्प समाज ने भी ऐसे २ काम किये हैं अगर कहोकि अनाथालय है तो अनाथालय अपने रुजगार वास्ते तथा अपना मत बढ़ाने के वास्ते खोले हैं इस में क्या नई बात है ?।

सच तो ये है कि जिन के माता पिताओं ने शिव जी का मन्दिर बनवा तन मन धन से सेवा कर अपने सारे कुल को उद्धार करने का यत्न किया था आज उसी कुल में कुल कलकी पुत्र पैदा होकर सनातन धर्म से मुख मोड़ अपने सारे वंश को डुबोने का संकल्प किया है। ये इस कली महाराज की ही दया मया है कुछ आश्चर्य नहीं अब हम भी हरकर इस कली महाराज से पादत्राण जोड़ कर प्रार्थना करते हैं कि कली महाराज आप अपना असर मेरे ऊपर न करना यानी सत्य सनातन धर्म से हटा कर किसी खड्डे में न गिराना आप दूर ही रहना इसी में हमारा कल्याण है (शुभमस्तु)

घूरी लाल-सूरजमल ब्यावर जि० अजमेर

श्री राम जी ॥

(ब्यावर आर्य समाजियों के समाजोपन में पोल)

(१) यहां पर कुछ दिनों से महाराज स्वरूप नाइब तहसीलदार साहिब पधारे हुये थे, हाल में उन की लड़की का विवाह असाढ़ शुक्ल १को था, जिस का कार्य श्री सनातन धर्म की रीति के अनुसार गणेशादि नवग्रह की पूजा विधी पूर्वक सहर्ष और आनन्द के साथ हुआ ॥

(२) लक्ष्मीचन्द बजाज के पुत्र मांगी लाल जो पक्का समाजी और बाल समाज का प्रधान है उस का विवाह असाढ़ शुक्ला ४ चतुर्थी का था जिस के साथ पांच सात दिवस बिनौली और बरात में वेश्या का नाच हुआ और गणेशादि नवग्रह की पूजा तथा श्री रघुनाथ जी के मंदिर में जा साष्टाङ्ग दण्डवत् कर १) रुपया भेंट किया और तुलसी चरणामृत ले मस्तक पर चढ़ा आचमन कर अपने जन्म को सफल किया ॥

(३) नन्दलाल सुनार जो पक्का समाजी और ब्यावर समाज का स्तम्भ है जिस ने असाढ़ शुक्ला को एक दुकान का महूर्त कराया जिस में गणेशादि नवग्रह की पूजा श्री सनातन धर्म की विधी पूर्वक किया ॥

(४) सूरजमल समाजी के लड़के का विवाह भी श्री सनातन धर्म की रीति के अनुसार हुआ प्रायः समाजी लोग आर्यसमाजियों में बैठ कर बड़ी २ लंबी चौड़ी डींगे हांका करते हैं, और शास्त्र पुराणों को चुटकियों से लघा फूंक से ही उड़ाया चाहते हैं परन्तु जब निजगृह सम्बन्धी कार्य करते हैं तब समाजीपन को तिलाञ्जली दे देते हैं तभी तो तुलसीदास ने कहा है कि

(पर उपदेश कुशल बहुतेरे । निज आचरहिं सो नरन घनेरे)

(५) महाशय चिरंजीलाल जी वैश्य का यज्ञोपवीत संस्कार अषाढ़ शुक्ल १३ को राज्य स्थान अजमेर आर्यसमाज के उपदेशक पं० काव्यतीर्थ जी ने कराया जिस में नवग्रह की पूजा तो न कराई परन्तु पं० जी ने स्वार्थ वश हो चिरंजीलाल जी से भिक्षा मंगवा कर आपने लेली प्रायः ऐसा लाभ हुआ करता है कि शिष्य यज्ञोपवीत संस्कार कराय गुरुद्वारे में जाकर पढ़ता है वहां भिक्षा माग गुरु के अर्पण कर फिर आप खाता है ॥

परन्तु पं० जीने न मालूम स्वार्थवश ये नकल यानी पोपलीला क्यों कराई और हमने पं० जी से पांच या छ प्रश्न किये थे उनका प्रत्युत्तर पं० जीतो कुछ न देसके परन्तु मध्यमें दहीमें मूशल लेकर नत्थूराम शर्म्मा कूद पड़े कि हम प्रत्युत्तर देंगे परन्तु उस महाशय ने भी कुछ उत्तर न दिया और न देने की आशा है और ऐसा भी सुना गया है कि प्रत्युत्तर न दे सके न कि किस कारण पत्रको फाड़ डाला अब पाठक लोग विचार कीजिये कि पं० काव्यतीर्थ जी में कितनी बुद्धिमानी है जो छोटे से प्रश्नों का उत्तर न देसके, वो प्रश्न पत्र इस प्रकार हैं।

श्रीमान् पं० काव्यतीर्थ शिवशंकर जी ! जै श्रीकृष्ण

मैं आपके दर्शनों के लिये बहुत दिनों से उत्कंठित था और आज आपका आगमन सुन बहुत प्रसन्न हुआ अब आशा है कि श्री कृष्णचन्द्र मेरी अभिलाषा को पूर्ण करेंगे, पं० जी महाराज मुझको 'दयानन्द कृत संस्कार विधीमें बहुत दिनों से अनेकप्रकार की शंकायें हो रही हैं सो कुछ एक शंकाओं का समाधान आप से करना चाहता हूं वो ये हैं कि स्वामी दयानन्दने लिखा है कि मेरा मत वेदानुकूल है और मै स्वतः प्रमाण वेद को मानता हूं अब इस लेखसे मुझे ये शंका उत्पन्न हुई है कि, स्वामी दयानन्द के माने हुए नाम मात्रके १६ और गिन्तीके १७ संस्कार कौन से वेद के किस अध्याय में हैं और चूड़ा कर्म संस्कार में छुरे से प्रार्थना लिखी है सो क्या छुरा जड़ नहीं

है क्या इनसे जड़ पूजन सिद्ध नहीं होता और निष्क्रमण संस्कार में चन्द्रमाको अर्घ देना लिखा है तो फिर संध्या में अर्घ क्यों मना किया है सूर्य के अर्घ देनेमें क्या वेदविरुद्धता और क्या भ्रान्ति है सो भी कृपा कर उत्तर दीजिये और गर्भवती स्त्री खिचड़ी में मुख देखकर पतिके पूछने पर कहे कि मैं पुत्र देखती हूं इसमें क्या वेद प्रमाण है और पति अपनी स्त्रीके केशों में तेल लगावे क्या इसमें वेद प्रमाण है यदि है तो बताइये नहीं मिले तो सं० वि० के ऊपर हरताल फेरिये और सं०वि० में लिखा है कि अमुक संस्कार अमुक नक्षत्र में अमुक कार्य्य अमुक चन्द्रमा में अमुक कार्य अमुक समय में अमुक कार्य्य अमुक दिशा की तरफ मुख करके करना और कई जगह कृ‌वायद भी कराई है सो यह पोपलीला स्वामी जी ने क्यों लिखी क्या स्वामी जी के लिये वेद में आज्ञा है कि स्वामी दयानन्द कहैं सो ठीक और सब पोप जाल है स्वामी दयानन्द ने अपनी बनाई संस्कारविधि में अनेक श्लोक तथा अनेक मंत्र मन गढ़ंत के मिला कर ऐसा जगह २ पर क्यों लिख दिया है कि, इदन्नमम, ये धोखे बाजी क्यों की है और संध्या विधी में ओं वाक् २ ओं चक्षुः २ इत्यादि ये कौन से वेद में हैं यदि आप कहें कि उस नित्य शुद्ध चैतन्य परमात्मा का नाम तथा वेदों का मूल मंत्र, (ओं) है तो ईसाई मुसलमानों को धन खर्च करके शुद्ध क्यों करते हो उन के नाम में (ओं) मिला दिया करो बस शुद्ध हो जायगा जैसे (ओं अब्दुल गफ़ूर, (ओं विलियम) पंजाब में शायद बहुत से समाजी कपड़ों के व जूतों के इसी वास्ते (ओं) लगाते हैं कि इन में शुद्ध चैतन्य करामात आ जावे ज्यादा टूटे फटे नहीं सो यह पोप लीला क्यों चलाई क्या वेद में आज्ञा है यदि कहो कि (ओं) शब्द वेद में है और वाक२ चक्षुः२ मुख नेत्र का नाम है इस लिये (ओं, वाक् २) करने से इन्द्रियें चेतन होती हैं तो क्या इन्द्रियें जड़ थीं सो चेतन करना है यदि कहो कि रक्षा होती है तो (ओं, वाक् २ पातु) करना चाहिये था सो ऐसा क्यों नहीं और कंठ और शिर भी क्या इन्द्रियां है सो भी कृपा कर बताइये, और इसी संध्या विधी में परमात्मा की परिक्रमा मन से करना लिखा है सो परमात्मा क्या सर्वव्यापक नहीं यदि नहीं तो क्यों नहीं अगर है तो परिक्रमा क्यों और किस की करना कहीं यह अभिप्राय तो नहीं हैं कि हमने ईश्वर की पूजा को तो खंडन कर दिया पर

कोई प्रकार से ध्यान भी न लगने पावे क्योंकि स्वा० द० ने तथा स्वामी तुल सी राम ने भास्कर प्रकाश में लिखा है कि मन को इधर उधर जहां तहां भ्रमाया करे कोई सूरत से एकाग्र चित्त हो कर ध्यान न लगने पावे, क्रमशः इन ऊपर लिखी हुई शंकाओं का समाधान पत्र द्वारा ही कीजिये आप प्रत्यु में पत्र जिन के हाथ भेजो उन से हस्ताक्षर करा लीजिये और वो मनुष्य मेरे हस्ताक्षर करा लेवे ऐसा न होने पर मैं जवाबी पत्र का उत्तर दाता नहीं मैं ऊपर लिखी हुई शंकाओं को महान् जिज्ञासुभाव से पूछता हुं आप कृपा कर अनुग्रह कीजिये और भूल चूक माफ फरमाइये किमधिकम्॥

ता० १३ जौलाई सन् १९०५ ईस्वी।

ह० हंसराज अग्रवाल व्यावर ॥

आ०समाजियों पर प्रश्न—

(१) मंत्र ब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम् ।

सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ २७५ द्वितीयावृत्तिः ॥ " यहां अनेकशः प्रमाणों से विरुद्ध होने से यह कात्यायन का वचन नहीं हो सकता" इत्यादि ॥

अथ वेद संज्ञाविचार पृष्ठ ८१ ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका । द्वितीय वृत्तिः ॥

एक कात्यायन को छोड़ के किसी अन्यऋषि ने उन के वेद होने में साक्षी नहीं दी है ॥

इस विषय पर सत्यार्थप्रकाश और ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में परस्पर विरोध है या नहीं ?। आपस्तम्ब के (मन्त्रब्राह्मणयोर्वेद०) सूत्र को कात्यायन का सूत्र लिखने से ज्ञात पड़ता है कि ग्रन्थ देख बिना ही आंख मीच कर दयानन्द मनःमा लिख देते थे तो प्रमादग्रस्त का प्रमाण ही क्या ?।

(२) विध्यर्थवादानुवादवचनविनियोगात् ॥

न्यायदर्शन २ । १ । ६१–६४ ॥

६४ वे सूत्र पर वात्स्यायन भाष्य देखिये ॥

यथा लौकिके वाक्ये विभागेनार्थग्रहणात् प्रमाणत्वमेवं वेदवाक्यानामपि विभागेनार्थग्रहणात् प्रमाणत्वं भवितुमर्हति ॥

इस से स्पष्ट सिद्ध है कि ब्राह्मण ग्रन्थ भी वेद हैं ॥ इस के विरूद्ध पृष्ठ ८४ ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में लिखा है कि महर्षि कात्यायन के अनुसार केवल मन्त्र भाग वेद हैं ॥

नश्रुतिरपि प्रधानकार्यत्वस्य ॥ सांख्य सूत्र ॥ अ० ५ । १२ ॥

इस सूत्र पर जो सत्यार्थप्रकाश में अर्थ किया है वह सांख्य के सिद्धान्त के विरुद्ध है ॥ देखिये सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ १९० ॥

तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् । योगदर्शनपा० १ । सू० ३॥

यहां पर, द्रष्टुः' का अर्थ सर्वज्ञस्य परमेश्वरस्य' किया गया है यह अर्थ भगवान् व्यास के भाष्य के विरुद्ध है देखिये इस पर भाष्य „स्वरूपप्रतिष्ठा तदानीं चितिशक्तिर्यथा कैवल्ये–इत्यादि" और सूत्र ४ और उस पर भाष्य और अन्तिम सूत्र ॥

"पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं, स्वरूपं- प्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति ॥ ३४ ॥

इन तीनों सूत्रों को इकट्ठा देखने से पूरा अर्थ लगजाता है इस के विरुद्ध ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में अर्थ किया गया है देखिये पृष्ठ १९१ और १९२ ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका ॥ (नोट) मेरे प्रश्न पूर्व मीमांसा, कृष्ण यजुर्वेद संहिता और अथर्ववेद और न्याय सांख्य और योगदर्शन से संबंध रखते हैं इस लिये इन प्रश्नों पर जो महाशय उत्तर देवें वे अवश्य उत्तर के साथ यह भी लिख देवें कि किन भाष्यादि के द्वारा वे मन्त्र और सूत्रों का अर्थ करते हैं ॥ ता० २१ अ० सन् १९०५ ॥

॥ ओ३म् ॥

श्रुतिस्मृतिमूलायनमः ॥

निम्न लिखित प्रमाणों से स्पष्ट सिद्ध है कि श्रुति अर्थात् वेद में मंत्र संहिता ब्राह्मण ग्रंथ और उपनिषद् संमिलित हैं यदि कोई इस के पक्ष में वा विरुद्ध कहना चाहे वह एक सप्ताह के भीतर स्वतः या दूसरों की अनुमति से कर प्रमाण सहित हमारे समीप पत्र भेजे या किसी समाचार पत्र में मुद्रित करावे उसका सम्यक् उत्तर देने को हम उद्यत हैं । आशा है प्रश्न और उत्तर में संबंध अवश्य ही रहेगा ॥ प्रश्नावलि नं० ३ ॥

(१) मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम ।

महर्षि आपस्तम्ब यज्ञ परिभाषा सूत्रम् ॥

मंत्र ब्राह्मणयोर्वेदस्त्रिगुणं यत्र पठ्यते ॥ २ ॥

इति परिशिष्टे ॥

एवं हि श्रूयते बृहस्पतिरिन्द्राय दिव्यं वर्षसहस्रं प्रतिपदोक्तानां शब्दानां शब्दपारायणं प्रोवाच नान्तं जगाम महाभाष्य आ० १ (३) फिर भी—

वेद शब्दा अप्येवं वदन्ति । योऽग्निष्टोमेन यजते य उचैनमेवं वेद ॥ इत्यादि महाभाष्य आ० १ ॥

इस से सिद्ध है कि ब्राह्मण वेद हैं ॥

विधिमंत्रयोरैकार्थ्यमैकशब्द्यात् (४)

तच्चोदकेषु मंत्राख्या । शेषे ब्राह्मण शब्दः ।

पूर्व मी० २ । १ । ३० । ३२ । ३३ ॥ महर्षिजैमिनि ॥

विधि (ब्राह्मण) और मन्त्र का एक अर्थ है क्योंकि दोनों को „ऐकशब्द्यात्" एक वेद संज्ञा है ॥

जिस अभिधान के उपदेशकों (प्रेरकों) में मंत्र यह संज्ञा प्रसिद्ध है ।

शेष जो है विधिरूप वेदभाग सो ब्राह्मण कहाता है ॥ इत्यादि से स्पष्ट है कि महर्षि जैमिनि मंत्र और ब्राह्मण दोनों को वेद मानते हैं ॥

(५)—इसी प्रकार महर्षि व्यास और उन के भाष्यकार स्वामी शंकराचार्यादि उपनिषदों को वेद अर्थात् श्रुति मानते हैं ॥ स्वामी शंकराचार्यादि कर्म कांड (अर्थात् मंत्र और ब्राह्मण) और ज्ञानकांड (अर्थात्) उपनिषद् को वेद मानते हैं यह बात उन के शारीरिक भाष्यादि ग्रन्थों से स्पष्ट प्रकट है।

श्रुतिरपिप्रधानकार्यत्वस्य । ५ । १२ ॥ (६)

सां० दर्शन । महर्षि कपिल ॥

इस का उदाहरण श्वेताश्वतरोपनिषद् से यह दिया जाता है "अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीःप्रजाःसृजमानां सरूपाः„ इससे सिद्ध है कि उपनिषत्श्रुति अर्थात् वेद हैं । फिर भी—

न श्रुतिविरोधो रागिणां वैराग्याय तत्सिद्धेः । सांख्यसू० ६।५१॥

इस पर देखिये विज्ञान भिक्षु आदि के भाष्य । वे क्या कहते हैं ॥

(७) विध्यर्थवाद००० न्याय दर्शन । २ । १ । ६१–६४ ॥

देखिये ६४ वें सूत्र पर वात्सायन भाष्य ॥

" यथा लौकिके वाक्ये विभागेनार्थग्रहणात् प्रमाणत्वमेवं वेदवाक्यानामपि विभागनार्थग्रहणात् प्रमाणत्वं भवितुमर्हति " ।

इस से सिद्ध है कि ब्राह्मण वेद है ॥ *

(८) " मंत्र ब्राह्मणात्मकः शब्दराशिर्वेद " इति वेदभाष्यकारः सायणाचार्यः ॥ "

इसी प्रकार न्या. मा. वि. (माधवाचार्य) से भी यही बात सिद्ध है॥

अपौरुषेयं वाक्यं वेदः सचविधिमंत्रनामधेयनिषेधार्थवादभेदात् पंचविधः । लौगाक्षिभास्करादि ॥

(९) स उत्तमां दिशमनुव्यचलत् । तमृचश्च सामानि च यजूंषि ब्रह्मचानुव्यचलन् इत्यादि ॥

स बृहतीं दिशमनुव्यचलन् । तमितिहासश्च पुराणंच गाथाश्च नाराशंसीश्चानुव्यचलन् । इतिहासस्य च वै स पुराणस्यच गाथानां च नाराशंसीनां च प्रियं धाम भवति य एवंवेद । अथर्व का० १५ प्र० २० अ० १ म० ३–४ ॥

इस से सिद्ध है कि ब्राह्मण और उपनिषद् वेद हैं ॥

अरे अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः । इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानान्यस्यैवैतानि सर्वाणि निःश्वसितानीति । शतपथका० १४ अ० ५ ब्रा० ४ कं० १० इससे सिद्ध है ब्राह्मण और उपनिषद् वेद हैं।

आपका कृपाकांक्षी विहारीलाल बी० ए० शास्त्री

गंजीपुरा जबलपुर सी० पी०

समाचार ।

हुशंगाबाद का समाचार आर्यमित्रमें समाजियोंने मिथ्या छपाया है वहां का सत्य समाचार यह है कि सनातन धर्मसभा हुशंगाबाद का वार्षिकोत्सव गत श्रावण कृष्ण द्वितीया तृतीया चतुर्थी तदनुसार ता० १८। १९। २०जुलाई को सानन्द समाप्त होगया उक्त उत्सव में इटावा से पं० भीमसेन जी शर्मा तथा मुरादाबाद से पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्र जी तथा बुलंदशहर से पं० बद्रीप्रसाद जी और नरवर की पाठशाला के अध्यापक पं० जीवनदत्त जी शर्मा भी पधारे थे प्रथम तथा द्वितीय दिन स्वस्तिवाचनादि होकर उक्त महोपदेशकों के अनुपम तथा अकाट्य युक्ति प्रमाण विभूषित व्याख्यान हुये सनातन धर्मसभा के नोटिस में तीसरा दिन शंकासमाधान के लिये रक्खा गया था आर्य समाज ने भी हाहा हूहू करने के लिये स्वा० दर्शनानन्द तथा पं० रुद्रदत्त को बुला लिया था यथासम्भव आर्य समाज ने शास्त्रार्थ से बचने के लिये अनेक उपाय रचे परन्तु सनातन धर्मियों ने न छोड़ा लाचार हो सभास्थल में आये परन्तु जब पं० ज्वाला प्रसाद जीने उन्हीं के यहांका आर्यमित्र में छपा अनेक अवगुणों से स्वा० दर्शनानन्द का आर्यसमाज से पृथक् करने का प्रमाण पत्र पेश किया तब स्वा० दर्शनानन्द घबड़ा गये पर पं० रुद्रदत्त जो कि इन्हीं पं० ज्वाला प्रसाद जी से शेर कोट के शास्त्रार्थ में परास्त हो चुके हैं शंका करने लगे जिनका युक्ति युक्त उत्तर दिया गया लाचार परास्त होना पड़ा पर सायं कालको फिर भी अपनी बेशर्मी के कारण सभा में आये बिना नियम सभा में व्याख्यान देने लगे परन्तु जब सभा में सनातन धर्म के महोपदेशक आये तब प्लेगाक्रान्त मूसेकी तरह मुख बादिया तदनन्तर उत्तमोत्तम व्याख्यान हुये पश्चात् सभा विसर्जन हुई ॥

द: ब्रह्मदेव शर्मा वि० नरवर

आदि आर्य समाज आफिस हुशंगाबाद सिटी८।८।१९०५

मेरा वृत्त आप प्रकाश कर दीजिये मैंने १२ वर्ष आर्यसमाज के ग्रन्थ पढ़े सैकड़ों व्याख्यान सुने दिन रात समाजियों से संसर्ग रक्खा परन्तु मुझे निम्न लिखित दोष दीखे (१) स्वामी जी के लिखे ग्रन्थों में किसी ने मिला

बट की है क्यों कि उन में परस्पर विरोध है (२) समाजियों की करतूत स्वामी के सिद्धान्त के प्रतिकूल है (३) मेरे चेलेंज कई पत्रों में छपने पर भी कोई विद्वान् उत्तर देने को खड़ा न हुआ (४) वैदिक धर्म का प्रचार न होकर व्यभिचार(नियोग)नास्तिकतादि का प्रचार होता है। उपदेशक भाड़ेके टट्टू हैं जिसने धन दिया उसी की प्रशंसा करने लग गये इन्हीं कारणों से मैंने आदि आर्यसमाज बनाया है जो स्वामी दयानंद के सिद्धान्तोंका उत्तम रीतिसे प्रचार करेगा. ह० पं० बेनीराम शर्म्मा

सम्पादक—हमारे पाठकों ने आदि आर्यसमाज का कुछ हाल पहिले भी ब्रा० स० में पढ़ा देखा होगा। ये आदि आर्यसमाज के प्रचारक पं० बेनीराम जी हम से मिल चुके हैं। यद्यपि उन के विचार सब के सब हमारे अनुकूल नहीं स्वा० दयानन्द के नाम से आगे २ कोई अच्छा वेदानुकूल सिद्धान्त भी भले ही शुद्ध हृदय से ही प्रचार करें और स्वा० द० का गौरव भी बढ़ावे तथापि सर्व साधारण उस पर श्रद्धा विश्वास नहीं कर सकते। इत्यादि कारण हम आदि आर्यसमाज के मन्तव्य से सर्वथा सहमत नहीं हैं। परन्तु वर्त्तमान आर्यसमाज की दशा हम डगमगाती हुई देखकर उन आर्यसमाजियों को शुद्ध हृदय से शुभ सम्मति देते हैं कि जो लोग आर्य, आर्यसमाज शब्दों को तथा स्वा० दयानन्द के नाम को तो अच्छा निर्दोष समझते और इन्हीं नामों का प्रचार भी चाहते हैं परन्तु सत्यार्थप्रकाशादि पुस्तकों में लिखी छपी वास्तविक असत्यबातों से जिन को घृणा वा अरुचि हो गयी है। ऐसे लोग आ०समाजों में अनेक हैं जो डमाडोल दशा में आरहे हैं। उन लोगों के लिये यह आदि आर्यसमाज अच्छा सहारा है। क्योंकि आ० समाज के नियम भी वेही इस में माने गये हैं जो पहिले हैं। और यह न सोचें कि एक छोटा आदमी इस नये समाज को कैसे चलालेगा ?। क्योंकि जब वर्त्तमान आ०समाज जिस में असत्य ठगाठस भरा है वही चल गया तो जिस में सत्य का विशेष विचार है वह क्यों नहीं चलेगा ?। हां ऐसे कामों में पहिले २ कठिनाइयें अधिक उठाने पड़ती हैं सो ठीक है पीछे सुगम हो जाता है। इस लिये जिन आ०समाजी महाशयों को स्वा०दयानन्द जी के लेख वा पुस्तकों में कुछ शङ्का होगयी है कि किसी ने कुछ मिला दिया क्या हो गया अथवा इन पु० में

क्यों चुप गया । स्वा० द० तो निष्पक्षपात सत्यवादी थे इत्यादि विचार वाले आ० समाजियों को अत्यन्त उचित है कि वे प्रथम पं० वेनीराम जी सत्पात्र क आदि आर्यसमाज से अवश्य पत्र व्यवहार करें । सम्भव होतो अपने यहां प० वेनीराम को बुलाकर उपदेश व्याख्यान करावें । हमारा अनुमान है कि कुछ दिन पीछे बहुत छोटा अंकुर जैसे बड़ा हृष्ट पुष्ट दीखता है वैसे यह आदि आर्यसमाज भी बढ़ेगा । जो अभी कुछ भी नहीं जान पड़ता है । इससे पूर्वोक्त प्रकार के विचार वाले लोग पं० वेनीराम से पत्र व्यवहारादि द्वारा सहानुभूति करें यही हमारी सम्मति है ॥

श्रीमान् स्वामी आत्माराम सागर संन्यासी मुकाम भदौड़ शहर रियासत पटियाला में २२ श्रावण सन् हाल शनिवार को पधारे अग्रे इतवार २३ प्रविष्टः से लेकर २७ श्रावण गुरुवार तक आर्य समाज के सत्यार्थ प्रकाशकी खूब पोल खोली विषय क्रम जानना ॥ हिन्दूशब्द के असलीतात्पर्य॥ सत्यार्थ प्रकाश खण्डन ॥ निराकार का ध्यान खंडन ॥ मूर्तिपूजा का अर्थ ॥ मूर्ति पूजा मंडन ॥ आर्य समाजियों को बड़े जोर शोर से भदौड़ सभा में बुलाया गया दो समाजी, आये उसी समय लाजवाब कर सभा से बाहर निकाल गये जिन को रूप धूल में मिलगया॥ मगर भदौड़ सनातन सभा के प्रबन्धकर्ता और प्रबन्ध निहायत ही ढीला था इस का कारण नारायण जाने ॥ २८ श्रावण ॥

अहाहा ! क्या ही आनंद का अवसर था—कि आज श्रीयुत पंडित लक्ष्मीदत्त जी कथादेवरी जिला सागर निवासी सादर छोहासी ग्राम वासियों की इच्छानुसार यहां सनातन धर्म संबंधी व्याख्यानार्थ सुशोभित हुए—दो दिन तक ग्रामके सम्पूर्ण नर नारी प्रेम पूर्वक एकत्र थे सर्व मनोरंजन व्याख्यान को श्रवण कर सर्व श्रोता गण बड़े आल्हादित हुए इस समाज में ३ आर्यसमाजी भाई थे वा दो आर्य अन्य ग्राम से उपस्थित थे श्रीमान् पंडित जी ने आर्य भाइयों की शंका भलीभांति समाधान की, तथा स्मृति वा अन्य ग्रन्थों से सत्यार्थ प्रकाश की त्रुटियां दर्शाईं सम्पूर्ण शंकायें समाधान होने के पश्चात् । (जिस में से १ एक का निर्णय वेद मंत्र से श्री काशी जी को श्रीयुत विद्वद्वर्य पं० शिवकुमार शास्त्री जी के समीप अर्पण किया गया है उत्तर आने पर) आर्य समाजी आर्य समाचार को परित्याग कर सनातन धर्म में पु-

तः प्रवेश करेंगे, ईश्वर इन आर्य भाइयों का मनोरथ शीघ्र सफल करे—सनातन धर्मावलम्बियों की विजय हुई—व्याख्यान होने के पश्चात् ५ दिन श्रीमद्भागवत की कथा सम्पूर्ण ग्रामवासियों तथा आर्य समाजियों ने श्रवण की श्रोतागण आनंद वा भक्ति में मुग्ध होते थे—

उपरोक्त लेख प्रिय सनातन धर्मावलम्बी भाइयों के निरीक्षणार्थ समाचार पत्र में मुद्रित कराया गया—

यहां पर १० माह से श्रीयुत स्वामी ब्रह्मानंद जी पधारे हैं वह मोतिया तालाव पर श्री महावीर जी का मंदिर बनवा रहे हैं

महात्मा जी की वृत्ति अत्यन्त प्रशंसनीय है

जल की वृष्टि अच्छी हुई, ज्वार, कपास, तिली धान आदि की उत्तम फसल को निरख कृषकगण आनंद में हैं।

नर्मदाप्रसाद पंडित मध्य प्रदेश जिला नरसिंहपुर मुकाम बोहानी

शिवचरणलाल जी मन्त्री स० ध० सभा फतहगंज जि० बरेली से लिखते हैं कि यहां पहिले से कोई सभास्थापित नहीं थी अब पं० ललिताप्रसाद जी तथा पं० कन्हैयालाल जी उपदेशकों के उत्तम २ व्याख्यान सुनकर यहां स०ध० सभा स्थापित होगयी। उक्त पण्डितों को सभा धन्यवाद देती है॥

भूलशोधन ब्रा० स० भा० ४ अं० १ के

पृष्ठ २९ पंक्ति ८ में २४ की जगह २४५ फिर पंक्ति १० में ७१ की जगह ७१५ तथा पृष्ठ ३० में पंक्ति ९ में २८७ की जगह २०७ और पृष्ठ ३२ पंक्ति १ में अ०२१ की जगह अ० २५ छपा है सो ग्राहक लोग सुधारलेवें॥

राजपूताना में नागरी का प्रचार किस विध हो सक्ता है।

उपरोक्त विषय पर जो महाशय ता० १ दिसम्बर १९०५ तक हिन्दी में लेख लिख कर भेजेंगे उन में जिस का लेख सबसे उत्तम होगा उन्हें यह सभा एक पदक भेट करेगी और अन्य उत्तम लेखकों को भी प्रशंसा पत्र दिये जावेंगे लेख फुलिसकेप के ८ पृष्ठ से कम और १६ से कम न होना चाहिये एक पृष्ठ में २५ से कम पंक्ती नहीं।

मुन्नालाल मंत्री नागरी प्रचारिणी सभा अजमेर

श्रीमान पं० नन्दकिशोर जी शुक्ल शास्त्री भूषण यहां पर पधारे थे आपने अपने सुन्दर व्याख्यानों से नगरवासियों को अपूर्व आनन्द प्रदान किया समाजी भाई भी यहां वहां गुर्राते रहे उक्त पं० जीने सभामें व्याख्यान देते

समय १ प्रबल प्रतिज्ञा करके कह दिया कि यदि कोई आर्यसमाजी स्वामी दयानन्द की सैकड़ों मिथ्या बातें जो वेदशास्त्रविरुद्ध सत्यार्थप्रकाशादि में लिखी हैं सत्य साबित कर देवे तो १००) रु० हम अपनी ओरसे देवेंगे इसके वास्ते दूसरे दिवस ९ बजे से ११ बजे सवेरे का समय नियत किया था परन्तु कोई समाजी न पधारे पत्र व्यवहार ही में समय नष्ट किया ॥ ता० ४-९-५ को कंदेली में भी एक अच्छा व्याख्यान भक्ति विषय पर हुआ श्रीमान् पं० जी यहां से मुड़वारा को ता० ८-९-५ को चले गये हैं ॥

भवदीय दर्शनाभिलाषीः-राधाकृष्ण पटरिया

नरसिंहपुर सी० पी०

आ०स० का मूल्य प्राप्ति स्वीकार १८ मई से १३ जून तक

४९१ श्रीलक्ष्मणगिरि जी गयां २।=)
११७५ श्रीअनिरुद्धलालजीनडियाद२।=)
८१७ बा० मुन्नीलाल जी नरौरा १॥)
९३० पं० छेदालाल जी वैमवीरपुर १=)
२९७ श्री ज्वालाप्रसाद जी पा०
जलालाबाद २।≈)
४५७ मूलजीभानजी दलालमुम्बई २ =)
५५१ बा०जसदेवनन्दनजी कामठी २।=)
११९५ पं० चन्द्रदत्त जी ग्रा० होलना २॥)
११८४ पं०शंकरलालजीशाहजहांपुर५॥।)
११७८ बालकराम चि० लाहौर २)
११७९ला०गणपतिरामसुनीमकरैली २।=)
११७७अमनादासनारायणदासमुम्बई ५॥)
११८७ ला० हीरालालजीनवाबगंज २।=)
९१४ विश्वेश्वरप्रसादजीअमरावां १।-)
९४९ पं गणपतिराम बुरहानपुर २।=)
११८१ पं० बद्रीप्रसाद जी घसैड़ा २।=)
११८५ रायबहादुर वल्लभदास जी
जबलपुर २।=)
११८६ बा०बिहारीलालजीजबलपुर२।=)
११९६ पं०शिवकुमारमिश्रखोराडोह२।=)
४२७ ला०हरीरामजी बहरायच १॥।=)
११८८ हरिनाथ शर्मा कांगड़ी २)
७७९ सत्यनारायण शर्मा आगरा २)
९३३ श्रीप्रसादीलाल जी अलीगढ़ २।=)
८४२ बा०देवकीनन्दनसिंहजीमुंगेर२।=)
४६३ बा० बिहारीलाल जी कोटा २।=)
१० पं० जयगोपाल जी लरिगना २॥)
३०५ लीलाधर शर्मा नयाबास २)
११९८ पं० कामताप्रसाद जी रसड़ा२।)
४७७ रामाधीनमिश्रसुनामगंज २।=)
४८६ बा० कालकासिंहवर्मा औरंध २ =)

७१८ बा० रघुनाथ हकीमवेलौन २।=)
११८९ बा०महावीरप्रसादसीतामढ़ी५॥)
१०४५ जमनाप्रसाद जी आजमगढ़ २।=)
८७४ पं० लक्ष्मणाचार्यजीवृन्दावन २।=)
४१९ पं० रामगोपालशर्माबगाईगाल २)
१११७ हीरजी लक्ष्मीदास मुम्बई २।=)
१११६ प्रेमजीखेराज मुम्बई २।=)
११९१अम्बाशंकरद्विवेदीजामनगर६॥।≡)
१११९ केशवजीवनमाली मुम्बई २।=)
१११४ रघुनाथ वशीलाल मुम्बई २ =)
९६६बा०नन्हूरामत्रिपाठीमिडियादो २॥)
७४९ सोमनाथ जी नागर मेरठ २।)
१११८ सेठ गोकुलदासजी० मुम्बई २ =)
११२१ ठक्कुरमथुरादासहरजीमुम्बई२।=)
११२० सेठ मौनजीबालजीमुम्बई २।=)
११२२ सेठ भावजी देवचन्द मुम्बई२।=)
१२०९ निकाराम शंकरलाल खेरा ३।=)
११९३ पं०आत्मारामसुखलालमनावां३॥।)
६१० बा०शंकरदयाल जी कानपुर २।=)
८९४ पं०श्यामलालजीबाज०वटेश्वर २।)
४२२ गदाधरप्रसाद जी जयपुर २)
११२३ सेठहुकमचन्दउमरसी मुम्बई २।=)
११२४ ठ० भावजीप्रेमजी मुम्बई २।≈)
११२५ ठ० मेगजीलुधो मुम्बई २।=)
११२९ सेठहरदासवल्लभजीमुम्बई २।=)
११३४ सेठदामजीभीमजी मुम्बई २।=)
११३५ सेठ केशवजी दामजी हीरजी
मुम्बई २ =)
११३७ सेठ उमरसी खेलजी मुम्बई २।=)
११३८ सेठअमरचन्दमाधवजीमुम्बई २ =)
११३९ सेठ प्रेमराज पंजाजी मुम्बई २।=)
११९० पं० सुखदेव शर्मा हाट २।=)

REGISTERD No 242

ब्रा०स०सम्बन्धी पत्रादि पं०भीमसेन शर्मा सम्पादक ब्रा०स०इटावा के पते से भेजिये

श्रीगणेशायनमः ।

ब्राह्मणसर्वस्व-

THE
BARHMAN SARVSAWA

आर्य्यंमन्यसदार्य्यकार्य्यविरहा आर्य्यास्त्वयीशात्रव,
स्तेषांमोहमहान्धकारजनिता-ऽविद्याजगद्विस्तृता ।
तन्नाशायसनातनस्यसुहृदो धर्मस्यसंसिद्धये,
आदिष्कान्तमिदंसुपत्रममलं निस्सार्य्यतेमासिकम् ॥
धर्मोधनंब्राह्मणसत्तमानां, तदेवतेषांस्वपदप्रवाच्यम् ।
धनस्यतस्यैवविभाजनाय,पत्रप्रवृत्तिःशुभदासदास्यात्॥

भाग ४ } मासिकपत्र मासाङ्क { ३

निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः
पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥

पं० भीमसेन शर्मा द्वारा सम्पादित होकर
वेदप्रकाश यन्त्रालय-इटावा में
मुद्रित होकर प्रकाशित होता है ॥
संवत् १९६२ चि० ३१ जौलाई सन् १९०५ ई०

ब्राह्मणसर्वस्व का अगाऊ वार्षिक मूल्य डाकव्यय सहित २।) है

प्रेस नं० ८

विज्ञापन छपाने बंटाने के लिये नियम ॥

१—जो विज्ञापन ब्रा० स० में छपें वा बांटे जावें उन के सत्यमिथ्या के उत्तरदाता विज्ञापन वाले ही समझे जांयगे। इस कारण ग्राहक लोग शोच समझ के व्यवहार करें।

२—ब्रा० स० में एक वार कोई विज्ञापन एक १ पेज से कम छपावे तो =)॥ लैनके हिसाब से लिया जायगा। तीन मास तक =)। ६ मास तक =) एक वर्ष तक -)॥ प्रति पङ्क्ति प्रतिमास लगेगा।

३—एक वार एक पेज पूरा छपाने पर ३) लगेगा। १ पेज तीन मास तक ७) छः मास तक १२) और १ वर्ष तक २०) लगेगा।

४—जिस किसी को विज्ञापन बंटाना हो वह ब्रा० स० के दफ़्तर से पूछ कर ब्रा०स० का क्रोड़ पत्र और तारीख़ छापनी चाहिये। ४ मासे तक का विज्ञापन ४) में ८ मासे तक का ५) में और १ एक तोला तक का ६) में बांटा जायगा। रु० छपाई और विज्ञापन बंटाई का पहिले लिया जायगा॥

ब्राह्मणसर्वस्व के नियम ॥

१—यह मासिकपत्र साढ़े छः फारम ५२ पेज रायल सायज का प्रतिमास की अन्तिम तारीख़ को निकलता है॥

२—इस का वार्षिक मूल्य डाकव्यय सहित बाहर के ग्राहकों से २।) सवा दो रुपया अगाऊ और इटावे के ग्राहकों से २) लिया जाता है॥

३—अगला अं० पहुंच जाने पर पिछला न पहुंचने की सूचना जो ग्राहक लिखेंगे उनको पिछलाअं० विना मूल्य फिर भेजा जायगा। देर होने पर द्विवारा अं० =) प्रति के हिसाब से मिलेंगे।

४—राजा रईस लोगों से उन के गौरवार्थ ५) वार्षिक मूल्य लिया जायगा॥

५—पुस्तकों कीसमालोचनाभी इस में यथोचित हुआ करेगी॥

६—जो पहिला अंक नमूना का मंगाकर ग्राहक होना चाहें वे तत्काल २।) भेजें और ग्राहक होने की सूचना दें। ग्राहक न हों तो ≡) के टिकट नमूना का मूल्य भेज देवें अन्यथा द्वितीय अंक वी०पी० उनकी सेवा में पहुंचेगा।

७—मूल्य भेजते समय ग्राहक लोग अपना नम्बर अवश्य लिखा करें। चिट्ठी पत्री नागरी वा अंग्रेज़ी में भेजा करें उर्दू के हम उत्तरदाता नहीं हैं।

८—कहीं बदली आदि के कारण स्थानान्तर में जावें तो अपना पता अवश्य बदलवावें। अन्यथा अंक न पहुंचने के उत्तरदाता हम न होंगे॥

९—जो ग्राहक लोग अन्य ग्राहक करावेंगे उन को यथोचित कमीशन मिलेगा और १० ग्राहक कराने वाले को १ मासिक पत्र विना दाम मिला करेगा॥

श्रीगणेशायनमः ॥

॥ ब्राह्मणसर्वस्व ॥

भाग ४] उत्तिष्ठतजाग्रतप्राप्यवरान्निबोधत [अङ्क ३

यत्रब्रह्मविदोयान्ति दीक्षयातपसासह ।
ब्रह्मा मा तत्र नयतु ब्रह्मब्रह्मदधातु मे ॥

मङ्गलाचरणम् (प्राणस्तुतिः)

नमस्ते प्राण ! क्रन्दाय नमस्तेस्तनयित्नवे ।
नमस्ते प्राण विद्युते नमस्ते प्राण वर्षते ॥२॥
यत्प्राणस्तनयित्नुनाऽभिक्रन्दत्योषधीः ।
प्रवीयन्ते गर्भान्दधतेऽथो बह्वीर्विजायन्ते ॥३॥
यत्प्राण ऋतावागतेऽभिक्रन्दत्योषधीः ।
सर्वंतदाप्रमोदते यत्किञ्चभूम्यामधि ॥४॥

अ०-हे प्राण क्रन्दाय मयूरचातकादिस्थमेघाह्वानरूपाय [क्रदिक्लदिआह्वाने रोदने चेत्यस्य क्रन्दइति घजन्तः शब्दः] ते तुभ्यं नमःकरोमि । मुखे विद्यमानः प्राणएवाह्वानशब्दरूपेण प्रादुर्भवति । स च मेघरूपेणावस्थितं स्वमेवांशमाह्वयति । तथाहेप्राण स्तनयित्नवे मेघरूपाय ते तुभ्यं

नमस्करोमि । आदित्यदेवस्य यः प्राणांशो मेघे मेघरूपेण विद्यते सएव भूमावागत्यौषध्यादिरूपो भूत्वाऽन्नादिखादनेन मनुष्यादिप्राणिषु नानाशक्तिरूपेण परिणतः सर्वजीवनहेतुर्भवतीति । तथा हे प्राण विद्युते विद्युद्रूपेण प्रादुर्भवित्रे ते तुभ्यं नमस्करोमि । हे प्राण ततो विद्योतनानन्तरं वर्षते वृष्टिकर्त्रे वृष्टिरूपाय ते तुभ्यं नमस्करोमि । यदोषधीरभिलक्ष्य स्तनयित्नुना मेघरूपेण प्राणः क्रन्दति रोदिति वर्षतीति यावत् । ओषध्यभिमुखो वर्षतीत्यर्थः । तदैवौषध्यन्नरूपेण परिणतमन्नरूपं प्राणं प्राणिनः प्रवीयन्ते खादन्ति तदा शुक्रशोणितोत्पत्तौ सत्यां स्त्रियो गर्भान्दधते ऽथोऽअनन्तरं बह्वीर्बह्व्यो मनुष्यपश्वादिस्त्रियो विजायन्ते बालान् जनयन्ति बहूनां व्यर्थमैथुनत्वान्न सर्वाइत्यर्थः । यद्वर्षर्त्तावागते ओषधीरभिलक्ष्य प्राणः क्रन्दति वर्षति तदैवं क्रमेण प्राणचेष्टने भूम्यामधि भूमेरुपरि यत्किंचदस्ति तत्सर्वं चराचरं प्रमोदते सुखीभवति ॥

भा०--यथा च कर्पासस्तूलसूत्रादिनामरूपे कृत्वाऽपरिसंख्येयपटावान्तरजातिषु परिणमते । सर्वनामरूपैश्च प्राणिसुखसाधको भवति । तथादित्यान्तर्गता ईश्वरांशभूता प्राणशक्तिरपि मेघादिनामरूपैः परिणता सती वृक्षवनस्पत्योषध्यन्नादिरूपा भूत्वा सर्वं चराचरं जोवयति रक्षति च । यथा च स्थूलदृष्ट्या कर्पासस्य नानापरिणामेषु सत्स्वपि न तस्य सूक्ष्मं वास्तविकं परमाणुस्वरूपं कामपि विकृतिमा-

प्रोत्येवमीश्वरांशरूपा प्राणशक्तिरपि नानाधिकरणेषु नानारूपा प्रतीयमानाऽपि वास्तविकं स्वरूपं न कदापि जहाति। तेनेश्वरे सविकारदोषापत्तिः केनापि स्वप्नेऽपि न सम्भावनीया। यथा च जपापुष्पादिगतो रागः स्फटिकेऽसन्नेव प्रतीयते तथैवेश्वरे प्राणादिनामरूपात्मके जन्ममरणादिकमसदेवास्तीति वेदसिद्धान्तः॥

भावार्थः हे (प्राण) प्राण (क्रन्दाय) मोर पपीहा आदि में ठहरे मेघको पुकारने की शक्ति रूप (ते) तुम्हारे लिये (नमः) नमस्कार करताहूं। मुखमें रहने वाला प्राणही पुकारना शब्दरूप से प्रकट होता है और वह मेघ नाम रूप से अवस्थित अपने ही अंशको पुकारता है। वास्तव में सर्वत्र ही जैसे बच्चा माता पिताको पुकारता है वैसे कार्य ही अपने कारण को अपनी रक्षा के लिये पुकारता है क्योंकि कारण से ही कार्यकी रक्षा तथा स्थिति होती है। जैसे अन्नसे प्राणियों की रक्षा होती है। तथा हे (प्राण) प्राण (स्तनयित्नवे) मेघरूप (ते) तुम्हारे लिये (नमः) नमस्कार करता हूं। सूर्य नारायण का जो प्राणांश मेघमें मेघरूप से विद्यमान है वही प्राणशक्ति पृथिवी में आकर ओषधी आदिरूप होके अन्नादि के खाने से मनुष्यादि प्राणियों में अनेक शक्ति रूपसे परिणाम को प्राप्त हुई सब चराचर के जीवन का हेतु बनती है। तथा हे (प्राण) प्राण (विद्युते) बिजुली के रूपसे प्रकट होने वाले (ते) तुम्हारे लिये (नमः) हमारा नमस्कार प्राप्त हो। हे (प्राण) प्राण! बिजुली चमकने तथा तड़पने पश्चात् (वर्षते) वर्षनेवाले वर्षारूप (ते) तुम्हारे लिये (नमः) नमस्कार करता हूं (यदोषधीरभि) जो ओषधि वनस्पतियों के ऊपर (स्तनयित्नुना) मेघरूप से (प्राणः) प्राण (क्रन्दति) रोता नाम ओषधियों के संमुख वर्षता है। उसी ओषधि तथा अन्नरूप से परिणाम को प्राप्त अन्नरूप प्राणको मनुष्यादि प्राणी (प्रवीयन्ते) खाते हैं तब रज वीर्यकी उत्पत्ति होनेपर स्त्रियां (गर्भान्दधते) गर्भको धारण करती हैं। (अथो बह्वीर्विजायन्ते) गर्भ धारण के पश्चात् मनुष्यादि की बहुत स्त्रियां बच्चों को पैदा करती हैं। अर्थात् सब नहीं क्योंकि बहुतों का मैथुन व्यर्थ होने से सब के गर्भ नहीं होता। (यत्) जब वर्षा (ऋतावागते) ऋतुके आने पर (ओषधिरभि) ओषधियों के संमुख (प्राणः) प्राण (क्रन्दति) रोता नाम वर्षता है (तदा) तब इस क्रमसे प्राणकी चेष्टा होनेपर

(भूम्यामधि) पृथिवी पर (यत् किंच) जो कुछ मनुष्य पशु पक्षी कीट पतंग वृक्ष वनस्पति ओषधि घास आदि है यह (सर्वम्) सब चराचर (प्रमोदते) सुख को प्राप्त होता है ॥

भा०—जैसे कपास, रुई सूत आदि नाम रूप बनके असंख्य वस्त्रों के नाम रूपों से परिणाम को प्राप्त होता और उन सब नाम रूपों से सर्दी घाम की निवृत्ति पूर्वक मनुष्यादि प्राणियों को सुख पहुंचाता है। वैसे ही सूर्य मण्डल में रहने वाली ईश्वरांश रूप प्राण शक्ति भी मेघ आदि नाम रूपों से परिणाम को प्राप्त हुई वृक्ष वनस्पति ओषधी और अन्नादि रूप धारण करके सब चराचर को जीवित रखती और रक्षा करती है। जैसे स्थूल दृष्टि से देखें तो कपास अपने अनेक परिणामों में विकार को प्राप्त होती हुई भी उसका वास्तविक सूक्ष्म स्वरूप किसी प्रकारके विकारको प्राप्त कदापि नहीं होता किन्तु कपड़े आदि में उसका असली सूक्ष्म स्वरूप वैसा ही ज्यों का त्यों बना रहता है कि जैसे कपास की दशा में उस के सूक्ष्मांश विद्यमान रहा करते हैं। वैसे ही ईश्वरांशरूप प्राणशक्ति भी अनेक मेघादि पदार्थों में भिन्न २ रूपसे प्रतीत होती हुई भी अपने असली स्वरूप को कदापि नहीं छोड़ती। इसी कारण ईश्वर सदा एक रस कहाता है। तिससे ईश्वर में विकारी होने का दोष किसी को स्वप्न में भी न मानना चाहिये। जैसे जपा पुष्प जो अत्यन्त लाल (सुर्ख) और स्वच्छ होता है उसको किसी स्वच्छ सफेद स्फटिक मणि वा स्वच्छ काच के समीप धराजाय तो उस फूलकी लाल चमक उस काच वा स्फटिक में पड़ेगी जिससे काचादि लाल दीखेगा परन्तु वास्तव में तत्वदृष्टिसे देखो तो काचादि में कोई रंग नहीं है किन्तु वह वैसा ही पूर्ववत् श्वेत स्वच्छ शुद्ध है वैसेही प्राणादि नाम रूपात्मक ईश्वर में जन्ममरणादि वास्तविक नहीं हैं किन्तु ये सब उपाधियों में हैं। वह तो सदा ही शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव है यही वेदका सिद्धान्त जानो। जब वेद में स्पष्ट ही कह दिया है कि (रूपं रूपं मघवा बोभवीति। इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते) ईश्वर उन २ पदार्थों में उन्हीं २ के रूप में होता है। जैसे सूत भिन्न २ वस्त्रों के नाम रूप से रहता है वैसे ही ईश्वर भी सब वस्तुओं में उन २ के रूप से ही विद्यमान है। इस दशा में जो उस को सर्वरूपों में नहीं मानते जानते वे लोग वेद के सिद्धान्त से सर्वथा वंचित हैं। सब नामरूपों में देखने मानने और स्तुति प्रार्थना उपासना करने से ईश्वर की प्राप्ति अतिसुगम हो जाती है

ब्रा० स० अंक २ पृ० ५८ से आगे कर्मकाण्ड देवपूजा विषय

(प्रश्न ९) ईश्वर की मूर्ति बनाना उसको कैद कर उसका अनादर करना है। क्या कहीं दरिया भी कूजे में बन्द हो सकता है ? कदापि नहीं।

(उत्तर ९) प्रश्नकर्त्ता की बुद्धि बहुत ही सराहने योग्य है देखो कैसा प्रश्न किया है। पाठकगण ध्यान देना आ० समाजियों ने स्वा० दयानन्द जो गज के हिसाब से अनुमान दो गज लम्बे थे उनकी मूर्त्ति चार २ छः २ अंगुल तक के कागजों पर बनाई छपाई है क्या उन लोगोंने स्वा० द० को कैद किया है ? क्या स्वा० द० का अनादर छोटी मूर्त्ति बनाकर इन लोगों ने नहीं किया ? क्या हाथी घोड़ा ऊंट आदिकी छोटी,२ असंख्य मूर्त्तियां (खिलौना) मट्टी आदि की बनायी जाती हैं तब असली हाथी आदि सब उन २ मूर्त्तियों में कैद हो जाते हैं ?। यदि नहीं हो जाते तो क्या केवल ईश्वर ही कैद हो जायगा ?। भूगोल का नकशा बनाया जाता सब मदर्सों में स्कूलों में पढ़ाया सिखाया जाता है तब क्या इतना बड़ा भूगोल नकशों में कैद होगया ?। और यह क्या कहीं का नियम है कि जिसकी मूर्ति बनायी जावे उसका अनादर उस मूर्ति के बनने से हो जाय वा इसमें कोई युक्ति प्रमाण है। संसार में यह नियम तो स्पष्ट दीखता है कि जो पुरुष जैसाही अधिक नामी प्रतिष्ठित प्रतापी पं० विद्वान् महात्मादि होता है उसके नाम का वैसा ही अधिक आदर करने के लिये उसकी वैसी २ अधिक मूर्तियां बनायीं तस्वीरें उतारी जाती हैं। और तस्वीरों के द्वारा उन२ प्रतिष्ठितों की वैसी२ प्रतिष्ठा तथा आदर संसार में हो भी रहा है। इसी कारण साधारण गुणहीन मूर्ख ग्रामीण लोगों की मूर्ति वा तस्वीरें नहीं बनाईजातीं हैं। इस कारण ईश्वर की मूर्त्ति बनने से उसका कैद में आना वा अनादर होना दोनों ही बातें युक्ति प्रमाण शून्य उलटी हैं। किन्तु ईश्वर सर्वोपरि पूज्य तथा मान्य है इस लिये उसके नाम की मूर्त्ति तथा तस्वीरें सबसे अधिक२ बननी चाहिये और वेदोक्त सनातन धर्म के अनुसार सबसे अधिक मूर्त्तियां ईश्वरावतारों की ही प्रत्यक्षमें अब भी बनी हुई हैं वा बनती जाती हैं और उन मूर्त्तियों वा तस्वीरों के द्वारा वैसा ही अधिक सर्वोपरि उसका यश और आदर किया जा रहा है। जैसे लोक में अच्छे नामी मनुष्यों की मूर्त्ति वा तस्वीरें उनका आदर वा

प्रतिष्ठा बढ़ाने के उद्देश से ही बनाई तथा प्रचार की जाती हैं वैसेही ईश्वर देवतादि की मूर्त्तियां भी उन २ का विशेष आदर करने के उद्देश से ही बनायीं तथा पूजी जाती हैं। ईश्वर औरदेवताकी मूर्त्ति के तुल्य मनुष्य की मूर्त्ति नहीं पूजीं जातीं इसका खास हेतु यही है कि मनुष्यों का आदर ईश्वर के तुल्य हद्द दर्जे तक करना अपेक्षित नहीं है। चाहें यों कहो कि मूर्त्तिमान् के आदर सत्कार प्रतिष्ठा करने की सीमा वा हद्द दिखाने के लिये यदि कोई काम जगत् में युक्ति प्रमाणादि द्वारा सिद्ध हो सकता है तो वह मूर्त्ति पूजा ही है। अर्थात् ईश्वर देवतादि का सर्वोपरि आदर करने का ही नमूना हिन्दुओं की मूर्त्तिपूजा है। इस मूर्त्तिपूजा से ही संसारभर की सब जातियों (क़ौमों) से अधिक आस्तिकता हिन्दुजाति में ही सिद्ध होती है। जो २ लोग जितना २ इस मूर्त्तिपूजा से सहमत नहीं वा जितने २ न्यूनाधिक इसके विरोधी हैं वे लोग उतने ही कम २ आस्तिक हैं वा उतने २ अंशमें नास्तिक हैं किन्तु इस कृत्य से सनातन धर्मीही सबसे अधिक आस्तिक सिद्ध हैं।

अब अन्तमें एक बात यह शेष रही कि क्या कहीं दरिया भी कूजे में भरा जा सका है ?। इस का उत्तर भी ऊपर के लेख में आगया कि मूर्त्तिमान् की मूर्त्ति बनाने का जब यह उद्देश ही नहीं कि उसको उसकी मूर्त्तिमें ठूंस-कर भरलें इसी विचार से मूर्त्ति वा तस्वीरें बनायी जावें। आजतक किसी आर्यसमाजी ने अपनी २ तस्वीर में अपने को वा स्वा० द० की तस्वीरों में स्वा० दयानन्द को ठूंस २ भर कर नहीं दिखाया। जब वे लोग ऐसा प्रत्यक्ष में पहिले दिखालें और मूर्त्ति वा तस्वीरों में मूर्त्तिमान् का भराजाना ही मूर्त्ति बननेका उद्देश भी सिद्ध करलें तब यही शंका ईश्वर की मूर्त्ति में भरेजाने के लिये कर सकेंगे। तब तक तो शंका हो ही नहीं सकती।

(१० प्रश्न) चरणामृतको आप व्याधि नाशन कहते हैं—

अकालमृत्युहरणं सर्वव्याधिविनाशनम् ।
विष्णुपादोदकंपीत्वा पुनर्जन्मनविद्यते ॥

तो उसीसे फिर अपनी व्याधिको दूर क्यों नहीं करलेते हो ?। अर्थात् बीमार होनेपर डाक्टर वैद्यादि का सहारा क्यों लेतेहो ?। दवाई क्यों करातेहो?।

(१० उत्तर) वास्तव में चरणामृत व्याधिनाशन ही किन्तु सब प्रकार की व्याधियों का परम औषध है। शास्त्र सम्बन्धी विशाल दृष्टि से देखो

तो ज्वरादिक व्याधि बहुत छोटी तथा गौण हैं और अनादि कालसे लगी काम क्रोध लोभ मोह रूप व्याधि बड़ी प्रबल और मुख्य हैं। तथा यह नियम भी है कि गौण मुख्य दोनों की प्राप्ति में मुख्य का ग्रहण होता है। और काम क्रोधादि ही ज्वर आदि रोगों के कारण हैं। इसी लिये काम क्रोधादि को ठीक २ जीत लेने वाले सिद्ध योगियों को ज्वरादि रोग भी नहीं होते। जैसे ज्वरादि रोगों से शरीर संतप्त पीड़ित दुःखित होता है वैसेही उनसे भी अधिक काम क्रोधादि के अधिक बढ़ने पर शरीर को संताप होता है। इस कारण इनके व्याधि होने में कुछ सन्देह मत समझो। इन काम क्रोधादि में मोह नामक अज्ञान वा मिथ्याज्ञान जिस को अविद्या भी कहते हैं सर्वोपरि प्रबल रोग सब प्राणियों के साथ लगा है। इसकी निवृत्ति के लिये यद्यपि अन्यभी उपाय हैं परन्तु उन सब उपायों में ईश्वरोपासना मुख्य है। ईश्वर की पूजा उपासना आराधना का मूल श्रद्धा है। यदि कोई मनुष्य अधिमात्र तीव्र संवेग से अर्थात् तन मन धन से सर्वात्मना ईश्वर की भक्ति पूजा उपासना में लग जावे। तो अति शीघ्र सब व्याधि मिटजावें ईश्वरोपासना के अन्य प्रकारों में सबसे सुगम और अच्छा प्रकार प्रतिमा द्वारा उपासना करना है। परन्तु प्रबल तथा अटल श्रद्धा होने पर ही प्रतिमा द्वारा पूजा उपासना ठीक बन सकती है। अनेक लोग श्रद्धाके ठीक होने पर ही वा दिखावटी श्रद्धा बनाके कि यजमान लोग हमको ईश्वर भक्ति में तत्पर देखेंगे तो कुछ अधिक देंगे ऐसे विचारों वाले हैं। वे लोग वा वैतनिक पुजारी लोग पूजा करके नित्य चरणामृत लेते हैं तो उनको भी लौकिक फल अवश्य होता है। ज्वरादि भी अन्यों की अपेक्षा उन को कम सताते हैं। परन्तु काम क्रोधादि महा व्याधियों का संशमन ऐसी उपासना पूजा से नहीं हो सकता। सो यह नियम भी है कि सर्वोत्तम उपाय द्वारा सर्वोत्तम फल प्राप्त कर लेने वाले मनुष्य जब सभी अंशों में कोई विरलेही सदा से होते आये हैं तो वैसे ही इस मूर्त्ति पूजा विषय में भी जानो।

अब रहा यह कि डाक्टर वैद्यों से दवा क्यों कराते हैं चरणामृत पीने से ही व्याधि दूर क्यों नहीं कर लेते तो यह समझ का दोष है। इस के लिये मात्रा का बोध करना अपेक्षित अवश्य है। सामान्य वाक्यों में विशेष विचार लिखा वा कहा नहीं जाता है। अन्न खाने से क्षुधा की और जल पी-

ने से क्षुधा की निवृत्ति होना प्रत्यक्ष सिद्ध है। पर कोई कुतर्क करे कि जिस को एक सेर अन्न की भूख और ढाई सेर जल की प्यास है उसे दशदाने अन्न के देवे और एक चिल्लू जल देदे तब उसके अन्न जल से भूख प्यास निवृत्त न हो किन्तु और बढ़े तब वह उक्त वाक्यों का खण्डन करे तो मात्रा समझने का दोष माना जायगा। परन्तु एक चिड़िया की भूख प्यास दश दाने अन्न और एक चिल्लू जल से भी निवृत्त हो सकती है। इसी के अनुसार यहां भी जानो कि जो लोग नित्य नियम से प्रतिमा द्वारा देव पूजा श्रद्धा के साथ करते और चरणामृत सदा पीते हैं उन को प्रायः ज्वरादि व्याधि होती ही नहीं न डाक्टर वैद्यों का शरण लेने पड़ता है। इस बात को अनुभव द्वारा आज़माना चाहिये। हमारी समझ में ईश्वरोपासकों में से यदि कभी किसी को रोग होते हैं तो अन्यों की अपेक्षा अत्यन्त कम होते हैं। और जो कुछ होते हैं तो इतनी ही त्रुटि उन की ईश्वरोपासना में है। यदि कुछ भी त्रुटि न हो तो रोगादि व्याधि कदापि न हों। जैसे प्रचण्ड प्रज्वलित अग्नि एक चिल्लूभर जल से बुझ नहीं सकता वैसे ही कोई सनातन धर्मी आदि कभी चरणामृत पी लेने मात्र से अपनी सब व्याधियों से छुटकारा नहीं पा सकता। अर्थात् जिस कर्म को बहुत काल तक निरन्तर श्रद्धा के साथ किया जाय वही ऐसा दृढ होता है जिस को विरोधी नहीं दबा सकते तभी उसका निश्चल फल होता है। अभिप्राय यह निकला कि जो लोग श्रद्धा के साथ नित्य नियम से चरणामृत पीते हैं उन को ज्वरादि रोग भी अन्यों की अपेक्षा कम सताते हैं। और जो कभी २ चरणामृत लेते हैं वे भी कभी न लेने वालों से अच्छे हैं तथापि उसकी जड़ पुष्ट नहीं होती इससे व्याधियों को दूर करने वाला कुछ हो भी परन्तु परिगणन में नहीं आ सकेगा। और सनातन धर्मी लोगों में जो वास्तव में ठीक २ आस्तिक हैं जिनको नास्तिक मतों की हवा नहीं लगी है वे मूर्त्ति पूजादि से ही अपनी सब व्याधियों को दूर किया ही करते हैं। वे लोग किसी समाजी आदि से व्याधि दूर करने के लिये कभी नहीं कहते। इस देवपूजा वा मूर्त्तिपूजा विषय में अनेक प्रश्न और भी ऐसे हो सकते हैं जिनपर बहुत कुछ लिखा जा सकता है। तो भी थोड़े से प्रश्नोत्तर लिख देने से पाठकों को ज्ञान हो जायगा कि ऐसे ही समाधान हो सकते हैं। इस लिये अब प्रश्नोत्तरों को यहीं रोक कर इस विषय के प्रकृत अंश पर हम आगे लिखेंगे ॥

दयानन्दी मत का वेद विरुद्ध होना ब्रा० स० अं० २ पृ० ६२ से आगे

प्रयोजन यह है कि इतना आर्य वर ने न माना तब कन्या के भाई ने उठा ले जूता खूब खबर ली सब हैसियत बिगड़गयी। अन्य लोग भी मारपीट देख घबड़ा के भाग गये खलबली मच गयी। इतना आर्य खूब पिटे। प्राचीन ऋषियों के अनुसार हमारा मत है ऐसा दावा करके सब ऋषियों से विरुद्ध मन माना निर्लज्जता का घृणित विचार लिखने मानने का यह प्रत्यक्ष परिणाम है। अब तु० रा० आदि समाजियों से पूछना चाहिये कि वीर्य स्थापन विधि तथा वीर्याकर्षण विधि ये क्या दो पुस्तक हैं तो कहां है ?। स्वामीजी ने जैसे कई जगह लिखा है कि संस्कार विधि के अनुसार अमुक काम करे वैसे ही इन विधियों के अनुसार दोनों स्त्री पुरुष करें ऐसा लिखा है। इस से ज्ञात होता है कि ये दोनों पुस्तक हैं। कुछ काल हुआ तब एक नये समाजी ने एक बुकसेलर को लिखा था कि वीर्यस्थापन विधि १० कापी और वीर्याकर्षण विधि की २० कापी मेरे नाम वे० पे० बिल भेज दो कन्या पाठशाला की लड़कियों को वीर्याकर्षण विधि पढ़ाऊंगा। उस बुकसेलर ने मुझे पूछा। मैंने उत्तर दिया कि जैसे ईश्वर के ज्ञान में वेद रहते हैं वैसे ये दोनों पुस्तक स्वामी द०जी के ज्ञान में ही रहते हैं बाहर नहीं निकले इन विधियों को स्वा० द०जी ही ठीक२ जानते थे। पाठक महाशय सोचिये कैसी निर्लज्जता का यह लेख है कि संन्यासी होकर ऐसा अश्लील घृणित बेशर्मी का विचार सब ऋषि शास्त्रों से विरुद्ध मन माना लिखे और ऐसे सैकड़ों लेख सम्बन्धी मिथ्या मत को बड़े २ एम० ए० बी० ए० बाबू लोग भी मानें क्या यह कम शोक का स्थान है ?। इसी से भारतवर्ष के डूबने का भय है। पाठक लोग तु० रा० आदि से पूछें कि वेद में कहां लिखा है कि विवाह जिस दिन हो उसी रात को विवाह विधि समाप्त होते ही कन्या वर दोनों सहवास करें (इस विस्तार हों) अत्यन्त शोक का स्थान है कि ऐसे वेदादि सब शास्त्रों से विरुद्ध मन माने घृणित निर्लज्जता के विचारों को लिखने मानने वाले आ० समाजी लोग यह दावा करें कि हमारा मत प्राचीन ऋषि आचार्यों के अनुकूल है। और हिन्दु लोग आधुनिक पौराणिक धर्म वाले हैं। तथा ब्राह्मण सभी पोप हैं। सनातन धर्मी लोगों को चाहिये कि ऐसी २ बातें आ० स० में से छांट २ याद करलें और समाजियों से पूछा करें कि (तुम लोग विवाह होने बाद त-

इकाल उसी रात को वीर्यस्थापन, और वीर्याकर्षण विधि भी करते मानतेहो या नहीं ? यदि मानते हो तो वेद में प्रमाण दिखाओ और नहीं मानते तो स्वा० द० के लेख पर हरताल फेरो) इत्यादि बातों का जवाब इन के पास कुछ नहीं है। क्योंकि वे लेख सर्वथा वेदविरुद्ध हैं। आगे जातकर्म संस्कार भी एक वेद शास्त्रोक्त उत्तम कर्म है जिस को सभी सनातन धर्मी लोग गृह्य-सूत्रों में लिखे अनुसार ठीक २ निर्विकल्प मानते हैं। पारस्कर गृह्यसूत्र में लिखे अनुसार स्वा० दयानन्द ने संस्कार विधि पुस्तकस्थ जातकर्म संस्कार में लिखा है कि "जब प्रसव होने का समय आवे (अर्थात् पेट में पीड़ा होने लगे) तब निम्न लिखित मन्त्र (एजतु दशमास्यो० शुक्ल यजु० अ०। ८ मं० २८) से गर्भिणी स्त्री के शरीर पर जल से मार्जन करे „

मन्त्रका अक्षरार्थ यह है कि " दश महिनेका गर्भ जरायु के सहित गर्भ स्थान से चले। जैसे यह वायु चलता और जैसे समुद्र चलता है वैसे दश महिने का गर्भ भी जरायु के सहित गर्भस्थान से चलकर बाहर निकले" इस अक्षरार्थ के अनुसार आ० समाजियों से पूछा जाता है कि स्त्री के शरीर पर मन्त्र पढ़के मार्जन करनेसे गर्भस्थ बच्चा क्या निकल आवेगा ? क्या यह स्वा०द० का लिखना आ० समाज के सिद्धान्त के अनुसार है ?। स्वा० द० ने मार्जन तो आलस्य निवृत्ति के लिये माना था। सो जब स्त्री के उदर में प्रसवकी पीड़ा होरही है तब उसे आलस्य कहां है ?। स्त्री के शरीर पर मार्जन करने से बालक शीघ्रही बाहर क्यों निकल आवेगा ? क्या इसमें कोई युक्ति है ?। तो तु० रा० आदि समाजियों से पाठक लोग पूछें। इस जातकर्मसंस्कार में पारस्करादि गृह्यसूत्रकार तथा मनु आदि धर्मशास्त्रों के अनुसार सर्व सम्मत दो कर्म मुख्य हैं। १-मेधा जनन, २-आयुष्य करण। इन्हीं का नाम जातकर्म है। सुवर्ण शहद और घी को मिला कर मन्त्र पूर्वक बच्चे को चटाना यही मेधाजनन कहाता है। पारस्कर गृह्यसूत्र कां० १ कं० १६ सू०३ यह है कि-

जातस्य कुमारस्याच्छिन्नायां नाड्यां मेधाजननायुष्ये करोति ॥ तथा मनु० अ० २। २९।

प्राङ्नाभिवर्द्धनात्पुंसो जातकर्मविधीयते।
मन्त्रवत्प्राशनंचास्य हिरण्यमधुसर्पिषाम् ॥२९॥

भावार्थ-नाल काटने से पहिले उत्पन्न हुए पुत्र के मेधाजनन तथा आयुष्य-करण संस्कार करे। मनु का अर्थ यह है कि-नाल काटने से पहिले पुरुष का

जातकर्म वेद के कल्प अङ्ग में विधान किया गया है। तथा सुवर्ण शहद और घी मिलाकर मन्त्र पूर्वक चटाना जो मुख्य कर जातकर्म का प्रधानाङ्ग है वह भी कल्पानुसार करना चाहिये। इसीके अनुसार सब कल्पसूत्रों और सब धर्मशास्त्रों की इसविषय में एक ही राय है क्योंकि ऐसा किसी ने भी नहीं लिखा कि नाल काटने के पश्चात् मेधाजननादि संस्कार करे। परन्तु स्वा० दयानन्द जी की राय सब शास्त्रों से विरुद्ध अब देखिये। सत्यार्थ प्र० २ समु० पृ० २९—

"जब जन्म हो तब अच्छे सुगन्धियुक्त जलसे बालक को स्नान नाड़ी छेदन करके घृतादि का होम०। इत्यादि।

तथा संस्कार विधि जातकर्म संस्कार पृ० ५१ आदि में—जहां वायु और शीतका प्रवेश न हो वहां बैठके एक बीता भर नाड़ी को छोड़ ऊपर सूत से बांधके उस बन्धन के ऊपर से नाड़ी छेदन करके ००० बच्चे की जीभ पर सोने की शलाकासे ओ३म् लिखके उस के कान में (वेदोऽसि) ऐसा कहे कि तेरा गुप्तनाम वेद है। तत्पश्चात् मेधाजननादि संस्कार करे" इसका स्पष्ट अभिप्राय यह हुआ कि मेधाजननादि संस्कार नाल काटने के पश्चात् करे यह स्वा० दयानन्द का मत सब शास्त्रों से विरुद्ध है और पारस्करादि कल्पसूत्र तथा मनु आदि धर्मशास्त्रों की राय है कि नाल काटने से पहिले ही मेधाजननादि कर्म करे। अब कहिये किसका मत ठीक माना जाय ?। प्रयोजन यह कि स्वा० दयानन्द का मन माना कल्पित विचार वेदादि सब शास्त्रों से विरुद्ध यहां भी सिद्ध हो गया है। यदि किसी समाजी को कुछ शक्ति हो तो वह किसी युक्ति प्रमाण से वेदानुकूल सिद्ध करे। सो करेगा ही कहां से क्योंकि वेदादि में वैसा प्रमाण मिलना ही दुर्लभ है।

आगे संस्कारविधि पृष्ठ ५४ में स्वा० दयानन्द जी लिखते हैं कि (अश्मा भव०) मन्त्र पढ़ता हुआ बच्चे के कन्धों पर हाथ धरे। वह पूरा मन्त्रयों है कि—

अश्माभवपरशुर्भव हिरण्यमस्तृतंभव । वेदोवैपुत्रनामासि सजीवशरदःशतम् ॥

अर्थ—हे पुत्र तू पत्थर हो फरसा हो ठोस सुवर्ण हो हे पुत्र तू वेद नाम का है सो सौ वर्ष तक जीवित रह।

पाठक ? गण! देखिये स्वा० द० उस बच्चे से कहते हैं कि तू पत्थर हो फरसा हो इत्यादि कैसी बात है क्या आ० समाजी लोगों का यही मत है ?।

आगे स्वा० द० जी लिखते हैं कि प्रसूता स्त्री के शिर की ओर जल से

भरा एक कलश (आपो देवेषु०) मन्त्र पढ़के धरे और वह दश दिन तक वहीं धरा रहे । वह पूरा मन्त्र यों है कि–

आपो देवेषुजाग्रथ यथादेवेषुजाग्रथ । एवमस्याᳫं सूतिकायाᳫं सपुत्रिकायां जाग्रथ ॥

अर्थः–घड़ा में भरे जल से स्वा० दयानन्दजी कहते हैं कि हे जलो तुम देवताओं में जागते हो जैसे तुम देवताओं में जागते हो वैसे पुत्र सहित इस सूतिका स्त्री के समीप में जागो । जब जड़ पदार्थ जल से ऐसा कहा तो मूर्त्ति पूजादि के मानने में समाजी लोग क्यों घबराते हैं । यदि कहें कि आप शब्द का अर्थ ईश्वर है तो हम कहेंगे कि ईश्वर शब्द का अर्थ काल है। ऐसे ही कोई शब्द तुम बोलोगे उस का हम कुछ न कुछ अन्य ही अर्थ कर देंगे । इस प्रकार अर्थ करने की कहीं सीमा न रहेगी यदि सीमा करोगे तो जल के अर्थ पर भी सीमा हो सकती है ।

सत्यार्थ प्र० समु० २ पृ: ३० में लिखा है कि भूतप्रेतादि कोई नहीं होते किन्तु जिन को शंका कुसंग कुसंस्कार होता है उन को भय और शंका रूप भूत प्रेत शाकिनी डाकिनी आदि अनेक भ्रमजाल दुःख दायक होते हैं । अज्ञानी लोग वैद्यक शास्त्र वा पदार्थविद्या के पढ़ने सुनने और विचार से रहित होकर सन्निपात ज्वरादि शारीरिक और उन्मादकादि मानस रोगों का नाम भूत प्रेतादि धरते हैं । इत्यादि ॥

स्वा० दयानन्द जी का यह लिखना वेदादि शास्त्रों से सर्वथा विरुद्ध है भूत प्रेतादि कोई नहीं इस निषेध वाक्य में न तो कोई प्रबलयुक्ति और न वेद का प्रमाण है । इस से यह लेख सर्वथा कपोल कल्पित मन माना है । हम इस विषय में प्रथम आयुर्वेद नाम सुश्रुत का प्रमाण दिखाते हैं क्योंकि स्वा० द० कहते हैं कि वैद्यक शास्त्र के न जानने से सन्निपातादि का नाम भूत प्रेतादि रख लेते हैं । सो यह महा झूठ है देखो सुश्रुत सूत्र स्थान अ० ३ श्लोक ४७ ।

अमानुषप्रतिषेधश्च तथाऽपस्मारिकोऽपरः ।
उन्मादप्रतिषेधश्च भूतविद्यानिरुच्यते ॥४७॥

अर्थः–उत्तर तन्त्र के अन्त में ६० । ६१ । ६२ । ये तीन अध्याय अमानुष प्रतिषेध । अपस्मारिक । उन्माद प्रतिषेध ये तीनों विषय भूत विद्या कहाते हैं । अर्थात् अपस्मार मृगी और उन्माद के साथ भी भूत प्रेतादि की छाया रहती है इससे तीनों ही नाम भूतविद्या हैं । उत्तर तन्त्र अ० ६०–(शेष आगे)

आ० स० अं० २ पृ० ६६ से आगे श्राद्ध विषय ।

जो २ मनुष्य लोग अपने २ कर्मानुसार पितृयोनि में जाने योग्य होते हैं। उन के भी कर्म मनुष्यादि के तुल्य ऐसे अवश्य मानने होंगे कि जिन का फल भोग पितृयोनि में उन को प्राप्त होना चाहिये। सो जैसे मनुष्यों को अपने २ पूर्व कर्मों के शुभाशुभ फल शत्रु मित्र स्त्री पुत्रादि द्वारा ही प्राप्त होते हैं। वैसे पितरों को भी अपने कर्मों का शुभ फल अपने अंश रूप पुत्रादि द्वारा प्राप्त होता है। यदि कहो कि पुत्रादि के किये श्राद्ध का फल तो पितरों को मिल गया तो पुत्रों को क्या मिला? क्या पुत्रादि का परिश्रम वा समय व्यर्थ ही गया? तब उत्तर यह है कि कोई पुरुष राजा रईस वा गुरु महात्मा को प्रसन्न करने का उद्योग करता है। यदि उस पर वह राजादि प्रसन्न हो जावे तो वह मान लेता है कि मेरा परिश्रम सुफल होगया। वैसे यहां भी पितरों को प्रसन्न संतुष्ट करना ही मुख्य उद्देश है। और प्रसन्नता का परिणाम सर्वत्र यही है कि जो जिस पर प्रसन्न होता है वह उस के वांछित मनोरथों को भी पूर्ण करता है। वैसे ही प्रसन्न हुए पितर लोग भी धन धान्य आरोग्य विद्या सन्तति धर्म में रुचि आदि कराके पुत्रादि को प्रतिफल द्वारा संतुष्ट प्रसन्न करदेते हैं इस से पुत्रादि को अपने कर्म का फल मिल जाता है।

शंका—यह तो माना परन्तु बड़ी शंका तो यह है कि पिता पुत्र का सम्बन्ध तो शरीर के साथ है जीव के साथ नहीं सो जब शरीर छूट गया तो वह शरीर पंचतत्त्वों में मिल गया। जीव ने अपने कर्मानुसार कहीं जन्म ले लिया तब पिता के साथ कुछ सम्बन्ध न रहने से अब पुत्र के किये श्राद्धादि का फल पितृ शरीर वाले जीव को कैसे प्राप्त हो सकता है? अर्थात् कदापि नहीं फिर मृतक श्राद्ध कैसे सिद्ध हो सकता है?।

समाधान—इस का उत्तर अधिक सूक्ष्मता की ओर जा सकता है उस को यथासम्भव बचाया जायगा। संसार में जड़ चेतन वा प्रकृति पुरुष दो अंश मुख्य हैं। प्रकृति पुरुष के मेल का नाम संसार और इन के परस्पर सम्बन्ध का छूट जाना मोक्ष वा परमार्थ है। जीव जब तक जन्म मरण के चक्र प्रवाह में रहता है तब तक प्रकृति का सम्बन्ध इस के साथ है प्रकृति का सम्बन्ध ही पंचतत्त्व का सम्बन्ध है। ईश्वर के साथ भी प्रकृति का सम्बन्ध अवश्य

लगा है क्योंकि प्रकृति सम्बन्धी ऐश्वर्य का स्वामी नाम मालिक होने से ही वह ईश्वर कहाता है। केवल भेद यही है कि जीव प्रकृति के आधीन और ईश्वर प्रकृति के आधीन नहीं है किन्तु प्रकृति ईश्वर के आधीन वा अधिकार में है। मनुष्यादि प्राणी जब मरता है तब उस का स्थूल शरीर छूट जाता है वही पंचतत्व में मिल जाता है पर सूक्ष्मतत्वों का सूक्ष्म शरीर जो कि स्थूल में सारांश रूप होके विद्यमान था वह जीव के साथ जन्मान्तर में जाता है। वास्तव में यह बड़ी भारी भूल है कि पिता पुत्र सम्बन्ध स्थूल शरीरों के ही साथ है सूक्ष्म के साथ नहीं। क्यों कि पिता पुत्र सम्बन्ध मुख्य कर सूक्ष्म के साथ ही है स्थूल के साथ वैसा नहीं इसी लिये पिता के शरीर का सूक्ष्म सारांश आकर ही पुत्र रूप बनता है। यदि कहो कि जड़ के साथ सम्बन्ध है चेतन के साथ नहीं तो यह भी भूल है जड़ चेतन दोनों के साथ सम्बन्ध है केवल जड़ के साथ नहीं है। जड़ चेतन दोनों अत्यन्त मिले हुए हैं। जैसे भांग वा अफीम में नशा वा अग्नि में गर्मी जल में शीतलता वैसे ही जड़ में चेतनांश मिला है। कहीं प्रकट और कहीं अप्रकट है। वैसे शरीरों में नशा आदि के तुल्य सब धातुओं में चेतनांश जो व्यापक है वह भी गर्भाधान के समय रज वीर्य के साथ जाता है। यदि कोई ऐसी रीति होती कि मुर्दा शरीरों से सन्तान पैदा होते तब तो पिता पुत्र सम्बन्ध केवल स्थूल शरीरों से ही है ऐसा कह सकते थे। सो मुर्दा होने पर शरीरों में रजवीर्य रहते ही नहीं। इस से यह सिद्ध हुआ कि जैसे भांग के साथ ही नशा भी रहता है वैसे ही रजवीर्य के साथ माता पिता का चेतनांश भी सन्तान में जाता है। तभी तो श्रुति स्मृति में कहा विचार भी ठीक घटता है।

अङ्गादङ्गात्सम्भवसि हृदयादधिजायसे।
आत्मा वै पुत्रनामासि सजीव शरदः शतम् ॥

यह वेद मन्त्र निरुक्तादि में लिखा प्रसिद्ध है कि हे पुत्र तू मेरे अङ्ग २ से पैदा हुआ है। अर्थात् मेरे हाथ पांव आंख नाक कान आदि अङ्गों के अंश से तेरे हाथ पांव आदि पैदा हुए हैं। और (हृदयं चेतनास्थानमुक्तं सुश्रुत देहिनाम्) चेतनता का स्थान जो मेरा हृदय है उस से तेरा चेतन हृदय हुआ है। इस कारण हे पुत्र तू मेरा ही आत्मा नाम स्वरूप है अर्थात् मैं ही तेरे पुत्र नाम रूप में प्रकट हुआ हूं। सो तू सौ वर्ष तक जीवित रहे ऐसी

प्रार्थना मैं करता हूं। जैसे सूत ही कपड़ा रूप हो जाता है वैसे पिता ही अपनी पत्नी रूप क्षेत्र के द्वारा पुत्र रूप से प्रकट हो जाता है। यही बात मनुस्मृति में भी स्पष्ट करके लिखी है। मनु० अ० ९ श्लोक ८।

पतिर्भार्यांसंप्रविश्य गर्भोभूत्वेहजायते।
जायायास्तद्धिजायात्वं यदस्यांजायतेपुनः॥

अर्थः—पति ही अपनी स्त्री में रज वीर्य के साथ सूक्ष्म रूप से प्रवेश कर गर्भ रूप बन के पुत्र नाम रूप से प्रकट होता है। जिस कारण पुरुष स्त्री में जायते नाम प्रकट होता है इसी से वह स्त्री उस पुरुष की जाया कहाती है। इत्यादि अनेक प्रमाणों से यह स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि माता पिता का ही चेतनांश भी सन्तान में आता है इस से स्थूल शरीर के साथ ही पिता पुत्र सम्बन्ध नहीं किन्तु सूक्ष्म चेतन शक्ति के साथ वास्तविक पिता पुत्र सम्बन्ध है। स्थूल शरीर तो पिता पुत्र सम्बन्ध की कार्य बाह्य को दिखाने वा करने का द्वार है। यदि पिता पुत्र दोनों के चित्त से सम्बन्ध किसी कारण निवृत्त हो जावे हट जावे तो स्थूल शरीरों के मौजूद रहने पर भी सम्बन्ध छूट जाता है। और यदि चेतन चित्त में सम्बन्ध बना तथा दोनों का दृढ़ प्रेम लगा है तो एक पिता का शरीर न रहने पर भी सूक्ष्म का सूक्ष्म के साथ सम्बन्ध बना रहता है! इस ऊपर के लेख का सारांश यह हुआ कि प्रकृति का सूक्ष्म सारांश आत्म चैतन्य युक्त जीव कहाता है उस का भी अंश पिता के शरीर से पुत्र में आता है। और जन्मान्तर से दूसरा जीव जो पुत्र में आता है वह भी अन्नादि के द्वारा पिता के शरीर में आकर उस के चेतनांश को लेता हुआ ही शुक्र के साथ गर्भ में आता है! और स्थूल सूक्ष्म का अंगांगि सम्बन्ध सिद्ध ही है कि जैसा गुड़ के साथ मिष्ट रस का सम्बन्ध है। इस से सिद्ध हुआ कि जीव के साथ भी पिता पुत्र सम्बन्ध है।

और यह भी नियम है कि जैसे पृथिवीमें एकही जगह नींब और आम दोनों बोदिये जावें तो नींब का सम्बन्ध कड़ुए पन के साथ होने से पृथिवी में व्याप्त कड़ुएपन के अंशको नींब का वृक्ष दूर२ से भी खेंचेगा और दूर२ का भी कड़ुआपन नींब के साथ आन्तरिक सम्बन्ध होने से स्वयमेव खिंच आवेगा। परन्तु नींब के अति समीप जो आमका मीठा अंश होगा उसको नींब का वृक्ष कदापि नहीं खेंचेगा। क्योंकि उसके साथ उसका कुछ सम्बन्ध नहीं है। यही बात वात्स्यायन ऋषिने न्यायके अ० १ आ० २ में स्पष्ट कही है-

यस्ययेनार्थसम्बन्धो दूरस्थस्यापितस्यसः ।
अर्थतोह्यसमर्थानामानन्तर्यमकारणम् ॥ १ ॥

अर्थ—जिसका जिसके साथ भीतरी सम्बन्ध है वह दूरस्थ होने पर भी उसी अपने सम्बन्धी का है और जिनका परस्पर सम्बन्ध नहीं उनका एकत्र होना मेलका कारण नहीं है। इसी के अनुसार जिन जीवों का पिता पुत्रादि सम्बन्ध है उनके परस्पर दूर हो जाने पर भी अर्थात् पिता के मरजाने परभी उनका परस्पर भीतरी सम्बन्ध वा आकर्षण बना है। इसी कारण पितृ रूप धारी वसु रुद्र और आदित्य देवता श्राद्धके पिण्डों वा ब्राह्मण भोजन के सूक्ष्म साराश वासनारूप तत्वको लेकर वहां२ पहुंचाते हैं कि जिस२ लोकस्थ जिस योनि में वे पिता पितामह वा प्रपितामह विद्यमान होते हैं। वह वासनारूप श्राद्धांश भी भीतरी सम्बन्ध होने से स्वत एव उधर ही को आकर्षित होता है पितर लोग भी अपने अंशको स्वयं भी खेंचते हैं। जैसे कि आकाश मण्डलस्थ नीले घन के साथ धुआंका भीतरी अंशांशी कार्य कारण सम्बन्ध होने से पृथिवी से उठा धुआं स्वयमेव अपने सम्बन्धी के पास जाताहै और आकाश मण्डलस्थ सूक्ष्म कारण जल भी उस धूमका आकर्षण करता खेंचता है। इसी के अनुसार पुत्रादिके किये श्राद्ध कर्मका सूक्ष्मवासना रूप फल भी वसु, रुद्र और आदित्य देवताओं की व्यापक शक्तियों के द्वारा पितरोंका सम्बन्धी होने से कालान्तरस्थ वा देशान्तरस्थ पितरों के पास दोनों के आकर्षण से स्वयमेव पहुंच जाता है। आशा है कि उक्त दृष्टान्तों के अनुसार श्राद्ध का फल पितरों को पहुंच जाने की रीति प्रश्न कर्ता और पाठक महाशयों के ध्यान में ठीक२ बैठ जायगी।

पर यह अवश्य ध्यान रहे कि जिनके कर्म अच्छे होते हैं उन्ही के अच्छे कर्मानुसार मरण समय से लेकर ही पिण्डदानादि सब कर्म श्रद्धा से करने वाले भी पहिले से ही तयार होते हैं। उसी श्राद्ध कर्मके अनुसार उनका जन्म पशु पक्षी कीट पतंगादि नीचयोनियों में नहीं होता किन्तु उनको पितृ लोकादि में उत्तम योनि ही प्राप्त होती है। मरने पश्चात् जिनका श्राद्धादि ठीक होता है उनको भी यदि नीच योनि ही प्राप्त होतो श्राद्ध का होना न होना एकसा हो जाय। चाहें यों कहो कि मरण के बाद जिनका श्राद्धादि कर्म होता है उनकी उत्तम गति होने का वही कर्म चिह्न रूप है। इसलिये पशु पक्षी आदि में उनके जन्महोने और श्राद्धका फल घास आदि रूप होकर मिलने की शंका यहां नहीं हो सकती ॥ (शेष आगे)

* (प्रश्न) जिनने यज्ञदान तप आदि कर्म अपने जीवन में बड़े समारोह से तथा प्रबल परिश्रम से किये हों और उन के श्राद्धादि कर्म करनेवाला कोई पुत्रादि न हो वा हो तो श्राद्धादि न करे तब क्या उनको उत्तम स्वर्गादि फल प्राप्त नहीं होगा क्या वे नीच गति में जायगे ? ।

(उत्तर) यज्ञादि कर्म करने वाले का सन्तान ऐसा तो हो नहीं सकता जो नास्तिकतादि के कारण श्राद्धादि न करे । क्योंकि सर्वथा कारण से विरुद्ध कार्य होता नहीं । हां यह हो सकता है कि पुत्रादि न हो वा हो भी तो इतना छोटा हो जो तत्काल ठीक कर्म न कर सके अथवा ज्ञान वैराग्य के कारण विरक्त हो जाने से श्राद्धादि न करे । प्रयोजन यह है कि कुछ हो जिसके यज्ञ दान तप आदि कर्म प्रबल हैं उनका श्राद्ध करने वाला कोई न हो वा होकर भी किसी कारण श्राद्ध न कर सके तो भी उसको अपने कर्मानुसार उत्तम स्वर्गफल अवश्य प्राप्त हो जाता है

(प्रश्न) जिसके उत्तम यज्ञदानादि कर्म हैं उनके यदि श्राद्ध करने वाले पुत्रादि भी हों और श्राद्ध भी करें तो वह व्यर्थ हुआ कि नहीं ? क्योंकि उनको तो अपने कर्मानुसार उत्तम फल स्वर्गादि विना श्राद्ध के भी प्राप्त हो ही जायगा जैसा कि तुमने अभी ऊपर स्वीकार किया है ॥

(उत्तर) हम इस प्रश्न का समाधान पहिले लिख चुके हैं कि जैसे राजा गुरु पिता आदि धन धान्यादि पदार्थों से पूर्ण होनेपर भी प्रजा शिष्य और पुत्रादि की समर्पण की भेट से प्रसन्न सन्तुष्ट होते हैं आशीर्वाद वरदान देते हैं । अर्थात् राजा के पास किसी वस्तु की कमी न होने पर भी कुछ समर्पण के द्वारा प्रजादि की भक्ति राजादि चाहते हैं । वैसेही स्वर्ग में प्राप्त हुए पितादि भी अपने अंश पुत्रादि की भक्ति चाहते हैं । और इस बात को यहीं क्यों न सोचलो कि तुम्हारे पास आमदनी होने पर तथा किसी कक्षा तक धन होने पर भी और अधिक २ धनादि तुम क्यों चाहते हो ? खाने पीने के पदार्थ विद्यमान होनेपर भी और अधिक २ पदार्थों को मनुष्य लोग प्रत्यक्ष में प्रायः सभी चाहते हैं । केवल पूर्ण योगी विरक्त पुरुष अवश्य नहीं चाहते । जब कि सभी भोगों के विद्यमान होते भी अधिक २ भोग चाहते हैं तो वैसेही स्वर्गस्थ पितादि के पास उत्तम भोग उपस्थित होने पर भी यदि वेदानुकूल धर्मानुकूल

* इस से पहिले पेज के अन्त में (शेष आगे) ऐसा भूल से छपा है ।

श्राद्धादि का अमृतरूप फल वे अधिक २ चाहते हैं तो आश्चर्य वा अनुचित ही क्या है ?। अथवा इस बात को ठीक २ समझने के लिये द्वितीय प्रकार यह भी हो सकता है कि यहां संसार में जो अच्छे पण्डित विद्वान् धर्मात्मा महात्मा लोग होते हैं वे अपने पुत्रादि का धर्मात्मा होना सब कामों से अधिक चाहते हैं और पुत्रादि के धर्मात्मा होने से सर्वोपरि सन्तुष्ट वा प्रसन्न होते हैं। और वेदोक्त कर्म का अनुष्ठान ही मनुष्य के धर्मात्मा होने का बड़ा चिह्न है। इसी के अनुसार देवता और पितर लोग जो स्वतः सिद्ध मनुष्य से भी बहुत अधिक विद्वान् महात्मा धर्मात्मा हैं वे अपने अंशरूप पुत्रादि की वेदोक्त श्राद्धादि कर्म के द्वारा अपने तुल्य उत्तमगति चाहते हैं।

इस बात की देवता और पितरों को बड़ी उत्कट इच्छा होती है। इस इच्छा के पूर्ण न होने पर उनको इस का बड़ा दुःख रहता है और उनकी इच्छानुसार यदि पुत्रादि वेदोक्त यज्ञ श्राद्धादि कर्म करते हैं तो अपने मनोरथ को पूर्ण होते देख अत्यन्त प्रसन्न संतुष्ट होते हैं। और प्रसन्नता ही सुख वा शुभफल प्राप्ति का चिन्ह है। इससे सिद्ध हुआ कि स्वर्गस्थ पितादि की प्रसन्नता और अपना कल्याण दोनों उद्देश से वेदोक्त श्राद्धादिक कर्म पुत्रादि को करना चाहिये। जब संसार में कोई मनुष्य अपने शुभ गुणों वा विद्यादि के अनुसार कोई बड़ा अधिकार प्राप्त कर लेता है तब भी उसको यह अपेक्षा विशेष कर रह जाती है कि मेरे पुत्रादि भी ऐसे ही उत्तमाधिकारी बनें यदि वैसे नहीं बनते तो यह दुःख भी उस उत्तमाधिकारी को अवश्य खटकता है वैसे ही यहां देवता और पितरों में भी जानो ॥

(प्रश्न) अब यह शंका शेष रही कि जिन पितादि के श्राद्धादि ठीक २ होते उन की उत्तम गति हीं होती है वे नीच गति में जाते ही नहीं। और नीच गति में जाने वालों का श्राद्ध नहीं होता तो देवलस्मृति के निम्न वचनों का अभिप्राय कैसे घटेगा ?।

देवोयदिपिताजातः शुभकर्मानुयोगतः।
तस्यान्नममृतंभूत्वा देवत्वेप्यनुगच्छति ॥१॥
गान्धर्वेभोग्यरूपेण पशुत्वेचतृणंभवेत्।
श्राद्धधान्नं वायुरूपेण नागत्वेऽप्यनुगच्छति ॥२॥

शेष आगे

आ० स० अं० २ पृ० ७२ से आगे वेदप्रकाश का अज्ञान

तान्यहं वेदसर्वाणि नत्वंवेत्थपरंतप ! ॥ ३ ॥ गीता ।

भाषा–जब २ धर्म की हानि और अधर्म की प्रबलता होती अधिक अत्याचार होने लगता है । तब २ मैं अवतार लेके धर्मात्माओं की रक्षा और अधर्मियों का नाश करता हूं । और धर्म की सम्यक् स्थापना करने के लिये प्रत्येक युग में प्रकट होता हूं । हे अर्जुन ! हमारे और तुम्हारे बहुत से जन्म बीत गये उन सब को हम जानते हैं पर तुम नहीं जानते । पाठक अब सोचिये कि जब २ धर्म की ग्लानि होती और अधर्म बढ़ता है तो क्या किसी एक ही चतुर्युगी में धर्म की हानि अधर्म की वृद्धि हो यह कोई कह सकता है ? । जैसे एक चतुर्युगी में धर्माधर्म दोनों के परिवर्त्तन होते हैं वैसे ही सब में होने युक्ति सिद्ध मानने पड़ेंगे । और जब साफ २ लिखा है कि (संभवामि युगे युगे) तो सभी चतुर्युगियों के सब युग आगये । इस से सिद्ध हुआ कि राजा दिलीप ने अपने से पहिली चतुर्युगी के द्वापर में हो चुके कृष्णावतार की कथा वसिष्ठ जी को पूछी थी इस से इस में कोई दोष नहीं आता । इस विषय में हम अन्य भी अनेक युक्ति प्रमाण उपस्थित कर सकते हैं सो आवश्यकता होने पर करेंगे ॥

तु० रा० का छिप २ के जुआ खेलना ॥

अपने नाम से जुआ खेलने का नोटिस देने में डरते हुए तु० रा० वर्ष ९ मास ८ के अन्त में मनुस्मृति को बेंचने के लोभ में आकर अपने छोटे भाई कु० ला० के नाम से जुआ का नोटिस छपा रहे हैं । मनुस्मृति पु० तु० रा० का है । कु० ला० का नहीं है । चार २ आने के टिकट ले २ कर अन्य आर्यसमाजी लोग ठगे जायंगे । तु० रा० अपना मूल्य पूरा कर लेंगे । सम्प्रति ऐसा जुआ खेलने वाले मनुष्य संसार में बहुत हैं । वर्त्तमान समय में अनेक प्रकार का जुआ संसार में चल रहा है और नयी २ रीतियां लोग सोचते जाते हैं । यहां तक बढ़ा है कि कई प्रकार का जुआ अंग्रेज लोग भी खेलते हैं । गवर्नमेण्टका कानून एक खास प्रकार के जुआ पर है । बड़े आश्चर्य का विषय है कि स्वयं जुआ खेलते हुए तु० रा० वे० प्र० पृ० १५५ । १५६ में पुराणों पर टेढ़ी निगाह करें । क्या इन लोगों को लज्जा नहीं आती ? । पुराणादि सभी ग्रन्थों में मद्य मांस आदि का जैसे विधान नहीं क्योंकि अप्राप्त में विधि होता और प्राप्ति में निषेध, जब मद्यमांस जुआ आदि स्वत एव राग प्राप्त हैं जैसे कि

स्त्री को पुरुष की और पुरुष को स्त्री की कामना राग प्राप्त है। उस के लिये शास्त्र का विधान हो नहीं सकता। इस लिये मद्यमांस मैथुन जुआ आदि के लिये (पञ्चपञ्चनखा भक्ष्याः) इत्यादि वाक्य शास्त्रों में परिसंख्यारूप से कहे गये हैं। जिन का अभिप्राय निवृत्ति परक है। आशा है कि तु० रा० को शास्त्रमर्यादा समझने की योग्यता होगी तो परिसंख्या का आशय समझ के संतोष करेंगे। अब रहा शंकर और भवानी का जुआ सो यह दैवी सृष्टि का विषय है। जो मनुष्य दैवी कामों का तत्त्व समझ लेगा उस को इन अंशों में फिर लेशमात्र सन्देह न होंगे। वास्तव में देवता लोग सूक्ष्म शरीरों के सूक्ष्म तत्त्वों वाले हैं। मनुष्य के तुल्य हाड़ मांस के शरीरों वाले देवता नहीं हैं। आकाश से जो वर्षा होती है यह द्यु लोक जो ऊपर पुरुष स्थानी है उस का वीर्य पृथिवी रूप स्त्री में गिरता है इस द्वारा पृथिवी देवताओं के मैथुन से ओषधि वृक्ष वनस्पत्यादि असंख्य सन्तान एक साथ पैदा होजाते हैं। इसी दैवी मैथुन से संसार की प्रायया-त्रा चल रही है। यह एक प्रकार का दैवी मैथुन है। द्वितीय दहिनी आंख में जो पुरुष शक्ति है वह इन्द्र देवता का एक रूपान्तर है और बायीं आंख में रहने वाली शक्ति इन्द्राणी का एक रूप है। इन दोनों का परस्पर मेल न होने पावे इस लिये देवताओं ने नासिका रूप बेड़ा बीच में लगादिया है। पर-न्तु जब मनुष्य सोता है तब दहिनी बांयी दोनों आंखों की शक्तियां हृदय स्थान में चली जाती हैं। इसी से आंखें मिच जाती हैं वहां हृदय में इन्द्र इ-न्द्राणी दोनों का मैथुन संयोग होजाता है। इसी दैवी मैथुन के कारण सोते समय मनुष्यों को आनन्द प्रतीत होता है। वह दैवी मैथुन का ही आनन्द है। पर जिनके एक ही आंख रह जाती है उन को कदाचित् वह दैवी आन-न्द न प्राप्त होता हो। सारांश यह हुआ कि जैसे दैवी मैथुन मनुष्यों का सा घृणित वा लज्जा का स्थान नहीं है वैसे ही देवताओं का जुआ भी मनुष्यों का सा नहीं है। रुपया पैसादि पार्थिव पदार्थों से देवता जुआ नहीं खेलते हैं न रु० रखते हैं। जगत्पिता शंकर और जगन्माता भवानी सदा अनादि का-ल से जुआ खेल रहे हैं। यह कभी समाप्त नहीं होता। चाहें इसी को राग विराग का खेल कहो। शंभु के जीत लेने का अभिप्राय यह है कि संसार में वै-राग्य की हार और राग की सदा ही जीत होती रहती है। स्त्री में राग वि-शेष और पुरुष में वैराग्य है। पुरुष की अपेक्षा स्त्री अधिक सुखी है। बीच में

हारता हुआ भी वैराग्य अपने शत्रु राग को दबाने के उद्योग रूप जुआ को छोड़ता नहीं इसी से धर्म की मर्यादा सर्वथा नष्ट नहीं होने पाती। तात्पर्य यह है कि देवी काम मनुष्यों से विलक्षण हैं। यह बात तब ठीक समझ में आसकेगी जब देवताओं का वास्तविक रूप कैसा है यह ठीक २ ध्यान में जम जावे। इस के लिये फिर कभी यथावसर लिखेंगे ॥

शंखचक्रचिन्हों का विचार।

वे० प्र० पृ० १५१ में लिखा है कि शंख चक्र का चिह्न जो कोई सनातनी धारण नहीं करता वह गधा पर चढ़ाके नगर से बाहर निकालने योग्य निन्दित बुरा है इत्यादि पद्मपुराण का लेख है। पद्म पुराण मुम्बई का छपा हमारे पास भी है। तु०रा० के लिखे पते पर हमने खोजा। छठे उत्तर खण्ड के २५१ अ० के एक २ दो २ अ० इधर उधर भी देखे पर तु०रा० के लिखे श्लोक हमें पद्म पुराण में नहीं मिले इस लिये हम प्रकरण देखे बिना विशेष समाधान नहीं लिख सकते। कहीं ऐसा न हो कि समाजियों ने किसी सम्प्रदायी ग्रन्थ के श्लोक लिख कर पुराण का नाम पता लिख दिया हो। क्योंकि (विविधानि च रत्नानि०) मनु के नाम से लिख के स्वा० द० मिथ्या लिखना समाजियों को सिखा ही गये हैं। अस्तु हम पहिले किसी अङ्क में सम्प्रदायी चिन्हों के लिये लिख चुके हैं कि शंख चक्रादि चिह्न वैष्णव सम्प्रदाय के हैं। इस लिये वह पद्मपुराण का कथन सब सनातन धर्मियों के लिये नहीं किन्तु जिन की कुल परम्परा से वैष्णव सम्प्रदाय चला आता है वे यदि शंख चक्रादि चिह्न धारण न करें तो निन्दित हैं। यह बात अनेक युक्तियों से भी सिद्ध हो जायगी। और ऊर्ध्वपुण्ड्र तथा शंख चक्रादि चिन्हों की जहां आवश्यकता दिखाई है वहां आगे पीछे वैष्णव शब्द भी मिलेगा। जब कि ग्रन्थों में सभी के प्रकरण हुआ करते हैं सब काम सब के लिये नहीं होते तो ये भी वैष्णवप्रकरण की बातें हैं सब के लिये नहीं।

कर्मकाण्ड में तु० रा० का अज्ञान

इस वर्ष ९ अं० ९ में जान पड़ता है कि तु०रा० का लेख कुछ नहीं है। इसमें १२ पेज लेख तो किसी काव्यतीर्थ पं० के विषय में कहीं का शास्त्रार्थ लिखा हुआ मिल गया उसको छपा के भर दिया। उससे आगे प्रेरित लेख छपा दिया है।

स्वाहास्वधावषट्कारैरङ्कितंमेषवाहनम् ॥
रक्तमाल्याम्बरधरं रक्तपद्मासनस्थितम् ।
रौद्रंतुवह्निनामानं वह्निमावाहयाम्यहम् ॥ ५ ॥

इन श्लोकों में अग्नि देवता की मूर्त्ति दिखायी है। ऐसी ही साकार अग्नि मूर्त्ति का ध्यान कर्मकाण्डी लोग करते और मूर्त्ति भी बनाते पूजते हैं।

ईश्वरः सर्वभूतानांहृद्देशेऽर्जुनतिष्ठति ।

यही साकार ईश्वर एकपाद् है किन्तु त्रिपाद् अमृत हृदय देश में आकर नहीं ठहरता है। निराकार को ब्रह्म कहना चाहिये इस में हम माण्डूक्य का भी प्रमाण पहिले लिख चुके हैं। और वैदिक शैली में कहीं कहीं २ कार्य वाचक पदों से कारण वाचक का वर्णन होता है सो प्रकरण के अनुसार समझने वाले समझते और अज्ञान में गोता खाने से बच सकते हैं ॥

छे० प्र० पृ० १७९ में (सार्वकालमेके) इतना टुकड़ा लिख के हम पर आक्षेप किया गया है कि कोई सब काल में उपनयन होना मानते हैं। यदि संस्कार विधि में भी एक निगाह से देख लेते तो (सार्वकालमेकेविवाहम्) कोई आचार्य सब काल में विवाह होना कहते हैं॥ ऐसा ठीक शुद्ध अर्थ पाठक जान लेते। पर अज्ञान ने ऐसी चेंट दबायी जो कुछ न सूझा। अपनी बे समझी की भूल को हम पर झोंकने लगे आशा है कि आगे लज्जित हो कर समझ के लिखा करेंगे।

अहिंसा धर्म की कक्षाओं को समझने के लिये प्रथम धर्मनिष्ठा होनी चाहिये सो जब नहीं है तो तुम धर्म के किसी अंश का भी तत्त्व ज्ञान हो यह दुर्लभ है। हम स्पष्ट दृष्टान्तों और युक्तियों सहित विस्तार के साथ लिख चुके हैं कि वेद विहित का ही नाम जब धर्म हो सकना सिद्ध है तभी तो विवाह होने पर उस स्त्री के साथ संयोग व्यभिचार नहीं कहाता पर वेद विधि न होने पर वहीं दोनों स्त्री पुरुषों का संयोग व्यभिचार रूप अधर्म माना जाता है। इसी के अनुसार वेदोक्त विधान पशु संस्कारादि होजाने पर वह हिंसा ही नहीं है। यदि वह भी हिंसा है तो विवाह होने पर भी स्त्री पुरुष का संयोग व्यभिचार ठहरेगा। समझदारों के लिये इतना ही बहुत है।

ब्रा० स० भाग ४ पृ० २८ से आगे विधिवाद ॥

और यहां कोई गुण विधानहै नहीं जिसके लिये गमन का अनुवाद आवश्यक होता। और नियम में अदृष्ट कल्पना के गौरव का जो आक्षेप किया है उस का उत्तर यह है कि वह अदृष्ट की कल्पना परिसंख्या में भी करनी पड़ती है, क्यों कि ऋतु भिन्न काल में जाने वाले के लिये अधर्म की कल्पना होती है। और जो यह कहा था कि नैयमिक पुत्र के उत्पादन विधि के आक्षेप से ही ऋतुकाल में नित्यगमन की प्राप्ति है इस लिये नियम व्यर्थ है। यह ठीक नहीं है क्योंकि। वह ही (ऋतुकाल में गमन का नियम) यह नैयमिक पुत्रोत्पादन विधि है। यह दोनों नियम भिन्न नहीं किन्तु वाक्य के आकार भेद होने पर भी अर्थरूप से एक हैं। यदि कहा जावे कि " एवं गच्छन्स्त्रियं क्षामां लक्षण्यं पुत्रजनयेत् " इस रीति से कृश स्त्री के समीप गमन करता हुआ पुरुष लक्षण वाले पुत्र को उत्पन्न करे, इस वचन में स्त्री के गमन से पुत्र के उत्पादन को भिन्न करके विधान किया है, अतः स्त्रीगमन और पुत्र का उत्पन्न करना दो बात हैं एक नहीं। यह कथन भी ठीक नहीं है क्योंकि गमन रूप साधन से ही पुत्र की उत्पत्ति को कर सक्ता है, इस लिये वह एकवाक्य से दोनों बात विहित हो जाती हैं। ऐसे गमन करता हुआ लक्षणवान् पुत्र उत्पन्न करे, जैसे अग्निहोत्र होम करता हुवा स्वर्ग को उत्पन्न करे इस वाक्य में अग्निहोत्र होम रूप उपाय से स्वर्ग की उत्पत्ति विधान की है और यह जो आक्षेप था कि नियम होने से असन्निहित और अशक्त को अशक्य अर्थ का विधान हो जावेगा, यह भी ठीक नहीं है क्योंकि सन्निहित और समर्थ ही के लिये नियम होता है। और यह विशेष रूप से इस प्रकरण में लिया भी है कि——

ऋतुस्नातांतुयोभार्यांसन्निधौनोपगच्छति ॥

, ऋतुस्नाता भार्या के निकट रह कर जो पुरुष गमन नहीं करता है वह भ्रूणहत्या में युक्त होता है ॥

यःस्वदारानृतुस्नातान्स्वस्थःसन्नोपगच्छति ॥

जो पुरुष स्वस्थ (रोग रहित) हो कर ऋतुकाल में स्नान किये हुवे स्त्री को गमन नहीं करता वह दोष युक्त होता है ॥

इन दोनों वाक्यों से समीपवर्ती और रोग रहित को दोष दिखाया है न कि दूर देशस्थ और रोगी के लिये, अतः यह नियम सन्निहित और

अरोग पुरुष ही के लिये है, अतः पूर्वोक्त दोष नहीं आसक्ता । और अनिच्छा (इच्छा न करना) की निवृत्ति तो नियम विधान ही से हो जावेगी । और विशेषण परता जो वादी ने दिखाई है वह भी नहीं होसक्ती क्यों कि पक्ष में विधि का सम्भव होता है । और गृह्य स्मृति का विरोध भी नहीं है, क्यों कि संवत्सर से पहले ऋतु दर्शन होने पर जाने वाले को ब्रह्मचर्य के स्खलन (टूट जाने का) दोष नहीं है । जैसे आर्द्रादि दिनों में ऋतु काल आने पर वह दोष नहीं है । इस से सिद्ध में स्वार्थ की हानि-परार्थ कल्पना-प्राप्त का बाध यह तीन दोष होते हैं ऐसी परिसंख्या का मानना युक्त नहीं है ।

यदि ऐसा कोई प्रश्न उठावे कि परिसंख्या में यह तीन दोष कैसे आते हैं, तो उस के जानने के लिये लिखते हैं कि स्वार्थ नाम प्रथम अर्थ जो विधि रूप „ परिसंख्या ” वाक्य से प्रतीत होता है उस का है, और परार्थ उस को कहते हैं जो प्रथम अर्थ का फलितार्थ निषेध रूप अर्थ दूसरा होता है, उन दोनों अर्थों में प्रथम अर्थ में परिसंख्या का वाक्य उदासीन रहता है और फलितार्थ जो दूसरा अर्थ है उस में तत्पर होजाता है, यह ही स्वार्थ की हानि और अन्यार्थ की कल्पना कहाती है । और फलितार्थ वाक्य से जिसका निषेध होता है वह ही स्वभाव से प्राप्त रहता है, और फलितार्थ वाक्य से जब निषेध हो जाता है तब वह बाधित होजाता है । इस रीति से परिसंख्या में तीन दोष आते हैं ।

नियम और परिसंख्या का परस्पर भेद ।

प्रवृत्ति के विषय में अनिच्छा मात्र की निवृत्ति करना नियम है । जैसे ऋतुकाल में भार्या के उपगम में अनिच्छा की निवृत्ति करने से „ ऋतौ भार्यामुपेयात् ” यह नियम है ।

और प्रवृत्ति के विषय के भाग में अनुज्ञा द्वारा भागान्तर से इच्छा की निवृत्ति करना परिसंख्या का प्रयोजन है जैसे यजनार्थी की प्रवृत्ति का विषय जो सम विषम भेद से दो प्रकार का देश है उस में सम देश की अनुज्ञा द्वारा विषम देश से इच्छा की निवृत्ति करने से „ समे यजेत ” यह परिसंख्या वाक्य होता है । नियम में अनिच्छा की निवृत्ति और परिसंख्या में इच्छा की निवृत्ति नियम में अभागी स्वम विषय है और परिसंख्या में

भागी स्थल विषय है। निर्दिष्ट उदाहरण में उपगम ‘ उपेयात् , से अनिच्छा की निवृत्ति बाधित होती है किन्तु इच्छा की नहीं, ’ समेयजेत , में विषम से इच्छा की निवृत्ति बोधित होती है किन्तु समदेश से अनिच्छा की नहीं। उक्त नियम का विषय जो उपगम है उस में कोई भाग कल्पित नहीं है, और उक्त परिसंख्या का विषय जो देश है उस में सम-विषम दो भाग कल्पित हैं, इस से नियम और परिसंख्या के स्वरूप और विषय परस्पर अत्यन्त भिन्न हैं, किसी प्रकार से इन का संकर नहीं हो सक्ता है। और परिसंख्या के स्वरूप में भागान्तर से निवृत्ति के लिये एक भाग में अनुज्ञारूप द्वार स्वीकृत है, इस रीति से नियम में कोई द्वार अनिच्छा निवृत्ति के लिये नहीं है, किन्तु मुख्य अर्थ ही से अनिच्छा की निवृत्ति है, यह भी इन दोनों का भेद है।

परिसंख्या और निषेध का परस्पर भेद।

शङ्का-परिसंख्या और निषेध का संकर „ अभक्ष्योग्राम्यशूकरः ” ग्राम्य शूकर अभक्ष्य है और „भक्ष्य आरण्यशूकरः” वन का शूकर भक्ष्य है, इन वाक्यों में होता है। क्योंकि प्रथम वाक्य ग्राम्यशूकर के भक्षण के निषेध द्वारा आरण्य (वन्य) शूकर के भक्षण की अनुज्ञा करता है, और द्वितीय वाक्य आरण्य शूकर के भक्षण की अनुज्ञा द्वारा ग्राम्यशूकर के भक्षण से निवृत्ति को बोधन करता है, इन में प्रथम में से निषेध द्वार और फलित अनुज्ञा है, और द्वितीय वाक्य में अनुज्ञा द्वार और फलित निषेध है, इस आकार भेद को छोड़ कर प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों में समान उपादेय होती हैं। इस से प्रथम वाक्य जो निषेध है और दूसरा जो परिसंख्या है इन का कुछ भेद प्रतीत नहीं होता।

समाधान-यह ठीक है परन्तु यह आप ने नहीं विचारा कि-प्रथम वाक्य अपने मुख्य अर्थ ही में चरितार्थ हो गया उस के तात्पर्य को अनुज्ञा तक ले जाने में कोई प्रयोजन नहीं है। क्योंकि ग्राम्य शूकर के भक्षण में अधर्म को लोक लौकिक प्रमाण से नहीं जान सक्ता, अतः उस ग्राम्यशूकर के भक्षण से स्वयं पुरुष निवृत्ति नहीं हो सकता और उक्त निषेध से हो सकता है। इस से वह स्वार्थ में तत्पर रहने से निषेध ही है। और द्वितीय वाक्य जो आरण्य शूकर के भक्षण को विधान करता है, लोक उस में स्वयं क्षुधा के वश हो कर प्रवृत्त है, उस में प्रवृत्त करने से उक्त वाक्य चरितार्थ नहीं हो सक्ता।

अतः अनुज्ञा द्वारा फलित निषेध से चरितार्थ है इस से परिसंख्या है निषेध नहीं। "कलञ्जंनखादेत्" कलञ्ज को नहीं खावे इत्यादि निषेध स्वयं व्यावृत्त है इन में कोई अर्थान्तर प्रतीत नहीं होता है। इस रीति से परिसंख्या और निषेध का परस्पर भेद है कहीं संकर नहीं होता।

विविधि विधि विचार की रीति ॥

एक वाक्य में अपूर्व विधित्व-नियमत्व और परिसंख्यात्व यह तीनों धर्म वा दो धर्म नहीं रहते किन्तु एक ही रह सकता है. क्योंकि जब दो धर्म वा तीनों धर्म कल्पित किये जावेंगे तब तीनों विधि परस्पर स्वरूप से विलक्षण होने के कारण उन के बोधक वाक्य भी उतने ही कल्पित करने पड़ेंगे। इस रीति से वहां एक वाक्य के अनेक वाक्य हो जावेंगे इसी को वाक्यभेद दोष कहते हैं. इस के दोष होने में युक्ति यही है कि आज्ञा करने वाला एक वाक्य में एक ही प्रकार की आज्ञा दे सक्ता है अधिक नहीं. अतः वक्ता के एक वाक्य के स्थान में अनेक वाक्य जो कल्पित होंगे वह वक्ता के अभिप्राय से विरुद्ध होने के कारण दोष रूप हैं। इस से यह जान कर कि एक वाक्य में एक ही अपूर्व विधित्व आदि धर्मों में धर्म रहेगा--विधि वाक्य में जिस पद में लिङ्—लोट्—तव्यत्—अनीयर् —यत् इत्यादि विधि बोधक प्रत्यय होवें उन प्रत्ययों से सम्बन्ध रखने वाला जो उसी पद में धातु है उस की क्रिया पर ध्यान लगाना चाहिये कि क्या? यह क्रिया अत्यन्त अप्राप्त है वा अत्यन्त अप्राप्त न होने पर भी क्या? यह पाक्षिक है और इस में अप्रवृत्ति वाले पक्ष में अधर्म वा इष्ट की असिद्धि दोष है ऐसा भी न होने पर देखना चाहिये कि क्या? यह किसी समुदाय का अंश है और इस में अनुज्ञा के द्वारा अंशान्तर से निवृत्ति चाहता है यदि ऐसा भी न हो तो उस विधि बोधक प्रत्यय के सम्बन्ध को उस पद के विशेषण में देखे क्यों कि यह न्याय है ॥

प्राप्तेभावार्थेवचनं विशेषणपरंयुक्तम् ॥

भावार्थ-(जिस में विधिबोधक प्रत्यय है) में जब तीनों में कोई से भी विधित्व का सम्भव नहीं हो तब विधान विशेषण का जानना इसी रीति से जब विशेषण में भी किसी प्रकार के भी विधित्व का सम्भव नहीं हो तब उस के विशेषण का विधान समझना चाहिये। शेष आगे

आ०स० भा० ३ मासांक ४ पृ० १६७ से आगे

अतिरिक्तागुणारक्ते वह्नेर्मांसेतुपार्थिवाः ।
मेदस्यपांभुवस्त्वस्थ्नि पृथिव्यनिलतेजसाम् ॥
मज्जिशुक्रेत्रसोमस्य मूत्रेचशिखिनोगुणाः ।
भुवस्तथार्त्तवेत्वग्नेरसेक्षीरेतथाम्भसः ॥

रुधिर में पृथक् गुण अग्नि के हैं, मांस में पृथिवी के मेद में पानी के, हड्डियों में पृथ्वी वायु और अग्नि के हैं, मज्जा और शुक्र में सोम के गुण हैं मूत्र मे अग्नि के गुण, आर्त्तव में पृथ्वी और अग्नि के गुण हैं। इसी प्रकार रसमें और स्त्री के दूध में जल के गुण जानो ।

वनितानांप्रसूतानां धमनीभ्यांस्तनौगतान् ।
रसादेवहिजायेत-स्तन्यंस्तनयुगाश्रयम् ॥
शुद्धमांसस्ययःस्नेहः सावसापरिकीर्त्तिता ।
मेदसःस्त्रवमाणस्य स्नेहोवाकथितावसा ॥
स्तन्यंरजोवसास्वेदो दंताःकेशास्तथैवच ।
ओजश्चसप्तधातूनां क्रमात्सप्तोपधावतः ॥

प्रसूता स्त्रियों के धमनियों(नाड़ियों)द्वारा स्तनों में प्राप्त हुये रसते ही दोनों स्तनों में दूध उत्पन्न होता है, शुद्ध मांस के स्नेह को वसा कहते हैं, अथवा मेदा में से जो चिकनाई चुचाती है वह वसा है, शार्ङ्गधर में लिखा है कि स्तन्य स्त्री का दूध, रज, वसा, पसीना, दान्त, केश, और ओज, ये सात क्रम से उपधातु हैं ।

प्रसूताहितमाहारं विहारंचसमाचरेत् ।
व्यायामंमैथुनंक्रोधं शीतसेवांविवर्जयेत् ॥
मिथ्याचारात्प्रसूताया योव्याधिरुपजायते ।
सकृच्छ्रसाध्योऽसाध्योवा भवेत्तत्पथ्यमाचरेत् ॥

प्रसूता स्त्री हितकारी आहार और व्यवहारों को करे तथा परिश्रम मै-

श्रम' क्रोध शीतल वस्तु का सेवन इन सब बातों को त्याग देवे। प्रसूता के मिथ्या आचरण से जो व्याधि उत्पन्न होती है वह कष्टसाध्य अथवा असाध्य होती है इस कारण से पथ्य का आचरण करे ॥

सर्वतःपरिशुद्धास्स्यात् स्निग्धपथ्याऽल्पभोजना ।
स्वेदाभ्यंगपरानित्यं भवेन्मासमतन्द्रिता ॥
प्रसूतासार्द्धमासान्ते दृष्टेवापुनरार्त्तवे ।
सूतिकानामहीनास्या-दितिधन्वन्तरेर्मतम् ॥
व्युपद्रवांविशुद्धांच विज्ञायवरवर्णिनीम् ।
ऊर्ध्वंचतुर्भ्योमासेभ्यो नियमंपरिहारयेत् ॥

स्निग्ध पथ्य और अल्प भोजन करने वाली प्रसूता स्त्री भले प्रकार शुद्ध हो जाती है, अर्थात् फिर उस के दुष्ट रुधिर भीतर नहीं रहता नित्य स्वेदन और तैल की मालिश कराया करे, इस प्रकार महीने पर्यंत सावधानी के साथ करे,।यदि प्रसूता स्त्री डेढ महिने के उपरान्त फिर रजस्वला हो तो वह प्रसूता नाम से रहित हो जाती है यह धन्वंतरि का मत है ।

रसप्रसादोमधुरः पक्काहारनिमित्तजः ।
कृत्स्नाद्देहात्स्तनौप्राप्तः स्तन्यमित्यभिधीयते ॥

रस का सार मधुर पक्क आहार के निमित्त से प्रगट हुआ वह सब देह से स्तनों में प्राप्त होकर स्तन्य दूध ऐसा कहाता है ।

स्तन्यंत्रिरात्रात्स्त्रीणांवा चतूरात्रादनन्तरम् ।
प्रवर्तयन्तिविवृता धमन्योहृदये स्थिताः ॥

हृदय में स्थित धमनी के मुख खुलकर स्त्री के स्तनों में दूध तीन दिन अथवा चार दिन के पश्चात् प्रवृत्त होता है ।

पयःपुत्रस्यसंस्पर्शा-द्दर्शनात्स्पर्शनादपि ।
ग्रहणादप्युरोजस्य शुक्रवत्संप्रवर्त्तते ।
स्नेहोनिरंतरस्तस्य प्रवाहेहेतुरुच्यते ॥

स्त्रियों को दूध पुत्रके छूने से देखने से और बालक के स्पर्श करनेसे तथा

उसके स्तन पकड़ने से शुक के सदृश प्रवृत्त होता है अर्थात् उतरता है दूधके उतरने में मुख्य हेतु प्यार ही कहा है ।

अवात्सल्याद्भयाच्छोकात्क्रोधादत्यपतर्पणात् ।

दूध के थोड़ा होने का कारण पुत्रमें लाड़ चाव न करना, भय शोक, क्रोध, अति अपतर्पण, और दूसरे गर्भका रह जाना इन कारणों से थोड़ा दूध उतरता है, ।

कषायंसलिलप्लावि स्तन्यंमारुतदूषितम् ।
पित्तादम्लंचकटुकं राज्योऽम्भसितुपीतिकाः ॥
कफदुष्टंतुयश्चोय निमज्जतिचपिच्छिलम् ।
द्वंद्वजंतुहिलिंगंसान्निपातिकम् ॥

जिनका स्वाद कषेला और जल के ऊपर तिरने वाला ऐसा दूध वात दूषित जानना । पित्त से खट्टा चरपटा और जल में गेरने से पीलीर धारों को छोड़ता है, कफ दूषित दूध जल में गेरने से नीचे बैठ जाता है, और लसदार होता है जिस में दोषद्वय के लक्षण मिलते हों वह द्विदोष से दूषित जानना और तीन दोषों के लक्षण मिल ने से सन्निपात से दूषित जानना ।

धात्रीक्षीरविशुध्यर्थं मुद्गयूषरसाशिनी ।
भार्ङ्गीदारुवचापिष्टा पिबेत्सातिविषा ॥
पाठामूर्वाब्दभूनिम्बैर्दारुशुण्ठिकलिंगकैः ।
सारिवामत्स्यपित्ताख्यैः क्वाथःस्तन्यविशोधनः ॥
पटोलनिंवासनदारुपाठामूर्वागुडूचीकटुरोहिणीच ।
सनागरंचक्वथितंचतोयंधात्रीपिबेत्स्तन्यविशुद्धिहेतोः ॥

धाय अथवा माता अपना दूध शुद्ध करने के लिये मूंग के जूष का भोजन करे और भारंगी, देवदारु, वच और अतीस इन को पीस कर पान करे तो शुद्ध हो जाय । अथवा पाठ मूर्वा नागरमोथा चिरायता देवदारु सोंठ इन्द्रजौ सारिवा और कुटकी इन का क्वाथ दूध को शोधन करने वाला है ॥

नीरेस्तन्यंयदेकीस्याद्विवर्णमतंतुमत् ।